वर्ष 32 अंक 06 जून 2011 मूल्य 25₹
Date of Posting: 05-06-2011
डाक पंजीयन संख्या : नागौर / 016 / 09–11
भारत सरकार पंजीयन संख्या : 35209 / 80

अधयात्म योग का मासिक पत्र

प्रेक्षाध्यान

सम्पन्नोऽहं स्याम्

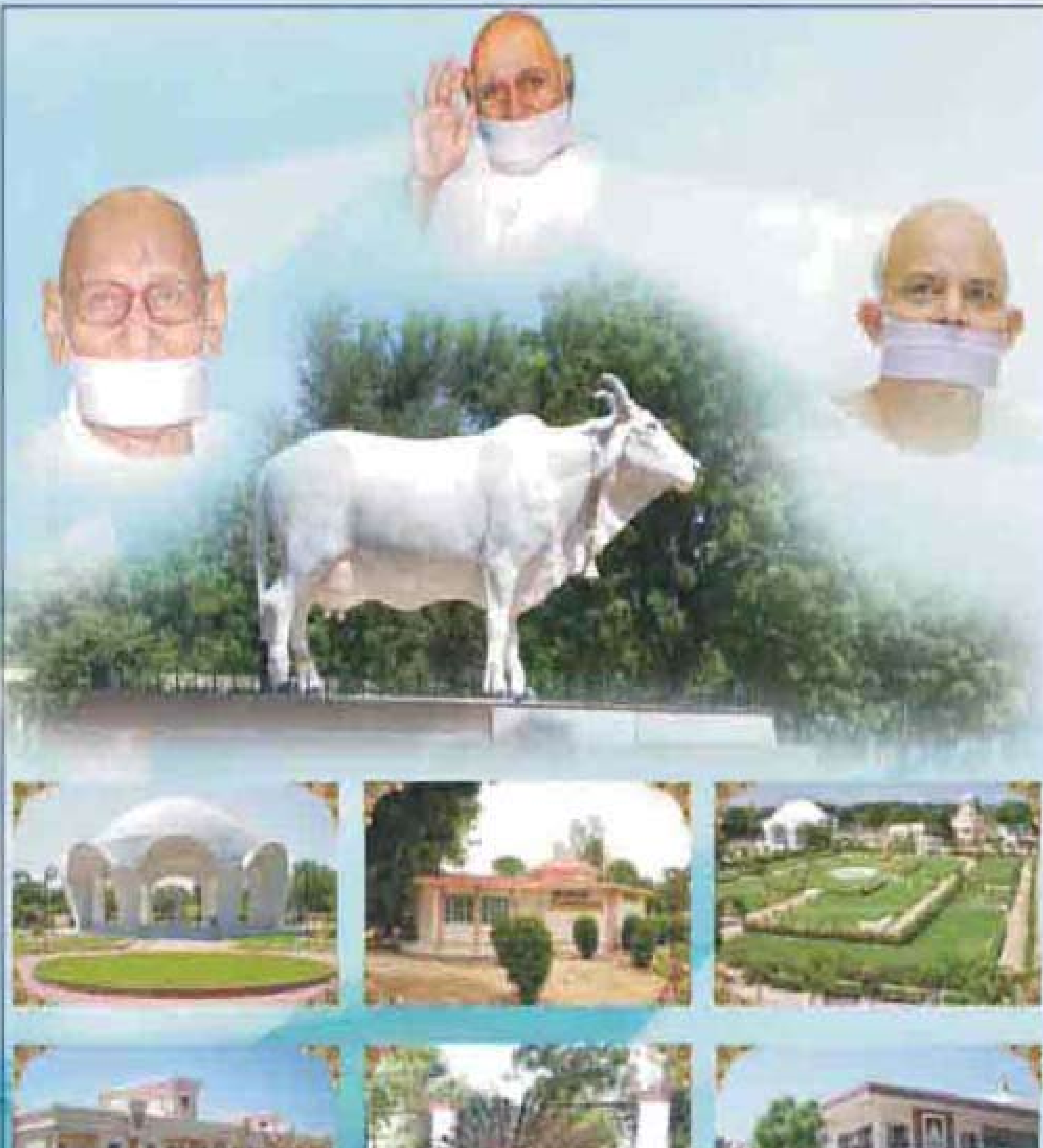

Welcomes you

Jain Vishva Bharati

Ladnun - 341306 (Rajasthan)

With Best Compliments : Surendra Choraria, Charwas-Kolkata

अध्यात्म योग का मासिक पत्र

प्रेक्षाध्यान

वर्ष :32 जून-2011 अंक-06

सम्पादिका
डॉ. समणी सत्यप्रज्ञा

•••

सह-सम्पादिका
डॉ. वन्दना कुण्डलिया

•••

आवरण सज्जा
सुरभि नाहटा (नागपुर)
अनूप खोजा

•••

कार्यालय
प्रेक्षा फाउण्डेशन
तुलसी अध्यात्म नीडम्,
जैन विश्व भारती,
लाडनूं-341306 (राजस्थान)
फोन : (01518) 222119, 9667234396
ईमेल : prekshadhyan@gmail.com

•••

सदस्यता शुल्क

एक अंक	:	25
एक वर्ष	:	250
त्रैवार्षिक	:	750
दस वर्ष	:	2500
विदेश के लिए वार्षिक	:	2500

"प्रेक्षाध्यान" में प्रकाशित सामग्री में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं।
"प्रेक्षाध्यान" की उनसे सहमति हो, यह आवश्यक नहीं। - सम्पादक

अनुक्रम

समाधि की उच्च प्रक्रिया	आचार्य तुलसी	06
मैं शुक्ल सम्पन्न बनूं	आचार्य महाप्रज्ञ	07
प्रशस्त जीवन शैली के आयाम	आचार्य महाश्रमण	10
भावधारा विशुद्धि का संदेश	आचार्य महाप्रज्ञ	12
मंगल भावना : एक टॉनिक	मुनि मदन कुमार	17
व्यक्तित्व निर्माण में विधायक भावों की भूमिका	साध्वी सिद्धप्रज्ञा	19
MANTRA MEDITATION	Mukhya Niyojika Sadhvi Vishrutvibha	33
MEDITATION : CREATING YOUR PRESENT & FUTURE	Samani Charitra Pragya	34

स्तम्भ

सम्पादकीय		04
प्रेक्षा तत्त्व		05
एक शब्द : एक चित्र		23
जिज्ञासा आपकी : समाधान परमपूज्य का		38
प्रयोगधर्मा महाप्रज्ञ	शुभू पटवा	39
	साध्वी मुदितश्री	41
अनुभव के स्वर		42
बढ़ते चरण		44

मार्गदर्शन

उपशम-रस

दर्पण में अपना प्रतिबिम्ब देखने के लिए दर्पण की स्वच्छता व स्थिरता अपेक्षित है। आत्म-दर्शन के लिए मन व इन्द्रियों की शुचिता तथा एकाग्रता अपेक्षित है। सामान्यतया जीवन इन्द्रिय-चेतना व मनश्चेतना की परिधि में चलता है। इस परिधि में हलचल है, चंचलता है, क्लेश है। शुद्धि या शुक्लता का संसार इनसे परे है।

शुद्धि सिद्धि का द्वार है। चित्त का प्रसन्न रहना शुद्धि का लक्षण है। शुक्ल सम्पन्न बनने की भावना प्रकृष्ट शुचिता, पवित्रता, विशोधि, निर्मलता, निष्प्रकंपता, आत्मलीनता, मन की अत्यंत स्थिरता पाने की भावना है। इस अवस्था में तैजस शरीर के साथ काम करने वाली चेतना या भावधारा पूर्णतया अवदात्त एवं मधुर पुद्‌गलों से संबद्ध हो जाती है। फलतः भौतिक आकांक्षाएं सिमट जाती हैं, आत्मिक अनुभूति के द्वार खुल जाते हैं। आत्म-पर्यावरण में राग-द्वेष, मोह, आकांक्षा, पक्षपात, निदान आदि का निशान भी नहीं रह जाता, अपवित्र मन-वचन-कर्म के लिए कोई अवकाश नहीं रह जाता, समत्व भाव एवं परिपूर्ण समाधि को आस्थान मिल जाता है।

शुक्लध्यान के चार सोपान हैं। भेद-विज्ञान का अभ्यास दृढ बन जाने पर अभेद प्रधान की योग्यता प्राप्त होती है। सर्वथा शांत मन एवं आवरण विलय के साथ स्थूल क्रियाएं विराम ले लेती हैं और तब, आत्म-प्रदेश शैलेशी अवस्था से सिद्धिश्री का वरण करते हैं।

जयाचार्य ने इस साधना क्रम को 'चौबीसी' के विविध स्तुति-गीतों में क्रमशः प्रस्तुत किया है—

'चेतन तन भिन्न लेखवी, ध्यान शुक्ल ध्यायंदा।'

अर्थात् प्रभु ऋषभ भेद विज्ञान के द्वारा आत्मा व शरीर को भिन्न समझकर शुक्ल ध्यान में लीन हो गए।

'लीन संवेग हो, ध्यायो शुक्ल ध्यान'

अर्थात् मुमुक्षा भाव में लीन होकर अभिनन्दन प्रभु ने शुक्ल ध्यान किया।

'ध्यान शुक्ल प्रभु ध्याय नैं, पाया केवल सोय।'

अर्थात् पद्म प्रभु ने शुक्ल ध्यान में लीन होकर केवल ज्ञान प्राप्त किया।

'शुक्ल ध्यानामृत रस लीना, संवेग रसे करि जिन भीना।'

अर्थात् धर्म प्रभु शुक्ल ध्यान रूपी अमृत-रस में लीन थे, संवेग रस से भीगे हुए थे और प्याले भर-भर कर उपशम रस का पान करते थे।

उपशम-रसलीनता हर कोई चाहता है। सतत् प्रयास एवं अभ्यास से इसकी उपलब्धि संभव है। क्रिया का प्रेरक तत्त्व भाव है। पाप की ओर ले जाने वाले अशुभ भाव को रोकें, शुभ एवं श्रेयस् के साथ शुद्धि की ओर आगे बढ़ें, सामने शुभ्र-शुक्ल सम्पन्नता का जगत् ही होगा। कमजोर से कमजोर आदमी भी एक काम तो कर ही सकता है और वह है-प्रयास। किसी कवि ने कहा—

'मत छुओ इस झील को
कंकड़ी मारो मत,
पत्तियां डारो नहीं,
फूल मत तोड़ो
और कागज की तरी
इसमें न छोड़ो।
खेल में तुमको तनिक
उन्मेष होता है।
पर
लहर बनने में
सलिल को क्लेश होता है।'

सलिल के लहर बनने में होने वाले क्लेश का संवेदन 'आत्म-तुला', आत्मिक-समानता की सोच से ही संभव है। जहां ऐसा संवेदन जाग जाता है या जगाने का प्रयास होता है, वहां कर्मों का, कषायों का आवरण विलीन होता चला जाता है। पवित्र आभावलय भीतर-बाहर-परिक्रमा करता रहे-शुक्ल-संपन्नता स्वतः दस्तक देगी।

- समणी सत्यप्रज्ञा

प्रेक्षा तत्त्व

परमध्यान

अवि झाइ से महावीरे, आसणत्थे अकुक्कुए झाणं।
उड्ढमहे तिरियं च, पेहमाणे समाहिमपडिण्णे।।

भगवान् उकडू आदि आसनों में स्थित और स्थिर होकर ध्यान करते थे। वे ऊंचे-नीचे और तिरछे लोक में होने वाले पदार्थों को ध्येय बनाते थे। उनकी दृष्टि आत्म-समाधि पर टिकी हुई थी। वे संकल्प-मुक्त थे।

णातीतमट्ठं ण य आगमिस्सं, अट्ठं नियच्छंति तहा गया उ।
विधूतकप्पे एयाणुपस्सी, णिज्झोसइत्ता खवगे महेसी।।

तथागत अतीत और भविष्य के अर्थ को नहीं देखते। कल्पना मुक्त महर्षि वर्तमान का अनुपश्यी हो कर्म-शरीर का शोषण कर उसे क्षीण कर डालता है।

मा चिट्ठह मा जंपह, मा चिन्तह किं वि जेण होइ थिरो।
अप्पा अप्पम्मि रओ, इणमेव परं हवे झाणं।।

हे ध्याता। तू न तो शरीर से कोई चेष्टा कर, न वाणी से कुछ बोल और न मन से कुछ चिंतन कर, इस प्रकार योग का निरोध करने से तू स्थिर हो जायेगा—तेरी आत्मा आत्मरत हो जायेगी। यही परम ध्यान है।

न कसाय-समुत्थेहि य, वाहिज्जइ माणसेहिं दुक्खेहिं।
ईसा-विसाय सोगा इएहिं, झाणोवगय-चित्तो।।

जिसका चित्त इस प्रकार के ध्यान में लीन है, वह आत्मध्यानी पुरुष कषाय से उत्पन्न ईर्ष्या, विषाद, शोक आदि मानसिक दुःखों से बाधित (ग्रस्त या पीड़ित) नहीं होता।

चालिज्जइ बीभेइ य, धीरो न परीसहोवसग्गेहिं।
सुहुमेसु न संमुच्छइ, भावेसु न देवमायासु।।

वह धीर पुरुष न तो परीषह, न उपसर्ग आदि से विचलित और भयभीत होता है तथा न ही सूक्ष्म भावों व देवनिर्मित मायाजाल में मुग्ध होता है।

जह चिरसंचिय-मिंधण- मनलो पवण-सहिओ दुयं दहइ।
तह कम्मेंधणममियं, खणेण झाणानलो डहइ।।

जैसे चिरसंचित ईंधन को वायु से उद्दीप्त आग तत्काल जला डालती है, वैसे ही ध्यानरूपी अग्नि अपरिमित कर्म-ईंधन को क्षणभर में भस्म कर डालती है।

साधना की उच्च प्रक्रिया

आचार्य तुलसी

भूख, पराक्रम-हीनता, अज्ञान, आसक्ति और दुर्बलता—ये पांच साधना के बहुत बड़े विघ्न हैं। इन पर जितने अंश में विजय पायी जाती है, उतने ही अंश में साधना उद्दीप्त होती है। दीर्घकाल तक कायोत्सर्ग करने का इच्छुक साधक अथवा तीर्थंकर तुल्य साधना करने का इच्छुक साधक उन विघ्नों पर विजय पाने का प्रयत्न करता है। साधना के प्रथम चरण में भूख पर विजय पाने का अभ्यास किया जाता है। दूसरे चरण में भय और निद्रा पर विजय पाने का प्रयत्न किया जाता है। तीसरे चरण में प्राण की सूक्ष्मता के साथ शास्त्रीय ज्ञान का अभ्यास किया जाता है। चतुर्थ चरण में सब पदार्थों से भिन्नता की दृढ़ अनुभूति प्राप्त कर आसक्ति पर विजय पाने का प्रयत्न किया जाता है। पांचवें चरण में साधना में आने वाले कष्टों पर विजय पाने का प्रयत्न किया जाता है।

कण्ठकूप में वायु को धारण करने से भूख और प्यास पर विजय प्राप्त होती है। यह पांचवें प्रकरण में बतलाया गया है। वहां भूखविजय की भावनात्मक प्रक्रिया का उल्लेख है। खाए बिना रहने का बार-बार अभ्यास तथा आहार न करते हुए भी तृप्ति और पुष्टि की सुदृढ़ भावना, अनुभूति या संकल्प करने से शरीर में कुछ रासायनिक परिवर्तन होते हैं और भूख की प्रखरता मंद हो जाती है। इस तपोभावना से साधक छह मास तक खाए बिना रह जाता है।

भय और नींद पर विजय पाने के लिए पांच अभ्यासक्रम बतलाए गए हैं—रात्रि के समय उपाश्रय में कायोत्सर्ग करना। उसके सध जाने पर उपाश्रय के आस-पास बाहरी भाग में कायोत्सर्ग करना। वहां अभय प्राप्त हो जाने पर चौराहे में कायोत्सर्ग करना। फिर सूने घर में और श्मशान में। इस प्रकार क्रमिक अभ्यास से भय और नींद—दोनों पर विजय प्राप्त हो जाती है।

प्राण, मन और वाणी—तीनों में सामंजस्य या सामंजस्य उत्पन्न करने पर चित्त की चंचलता या विषमता क्षीण हो जाती है। सूत्र भावना के द्वारा साधक इसी सामंजस्य का अभ्यास करता है। उच्चारण और काल की मात्रा इतनी सध जानी चाहिए कि उच्चारण के द्वारा काल को और काल के द्वारा उच्चारण को मापा जा सके। कायोत्सर्ग या ध्यान में काल का ज्ञान उच्चारण और श्वास के द्वारा ही किया जाता है। एक श्वास-प्रश्वास में श्लोक के एक चरण का उच्चारण किया जाए तो एक मिनट में बारह चरण उच्चारित होते हैं। इसका अर्थ हुआ एक मिनट में बारह श्वास-प्रश्वास लिए जाते हैं। अभ्यास की परिपक्वता होने पर बारह चरणों के उच्चारण का अर्थ होता है—बारह श्वास-प्रश्वास और बारह श्वास-प्रश्वासों का अर्थ होता है—एक मिनट। इस प्रकार उच्चारण श्वास-प्रश्वास और समय की दूरी समाप्त होकर वे एकरूप हो जाते हैं। इस प्रक्रिया में चिरकाल के बाद श्वास की गति मन्द हो जाती है। एक मिनट में आने वाले सोलह-सत्रह श्वास घटकर पांच-सात रह जाते हैं। जिस प्रकार श्वास की गति मंद होगी, उसी अनुपात से उच्चारण की संख्या भी कम हो जाएगी। इस साधना की अंतिम परिणति प्राणलब्धि के रूप में बदल जाती है। प्राण-लब्धि-सम्पन्न साधक मानस-चक्षु से

शेषांश पृष्ठ 18 पर

साधना के प्रथम चरण में भूख पर विजय पाने का अभ्यास किया जाता है। दूसरे चरण में भय और निद्रा पर विजय पाने का प्रयत्न किया जाता है। तीसरे चरण में प्राण की सूक्ष्मता के साथ शास्त्रीय ज्ञान का अभ्यास किया जाता है। चतुर्थ चरण में सब पदार्थों से भिन्नता की दृढ़ अनुभूति प्राप्त कर आसक्ति पर विजय पाने का प्रयत्न किया जाता है। पांचवें चरण में साधना में आने वाले कष्टों पर विजय पाने का प्रयत्न किया जाता है। एकत्व की भावना का दृढ़ अभ्यास करने पर शरीर, उपकरण आदि पर होने वाली आसक्ति क्षीण हो जाती है। संयोग हमारी व्यावहारिक सच्चाई है। हम उसका अतिक्रमण नहीं कर सकते किन्तु इस वास्तविकता को भी नहीं भुला सकते कि अन्ततः आत्मा उन सबसे भिन्न है। इस भेदज्ञान की अनुभूति को पुष्ट कर साधक देह में रहते हुए भी देह के बन्धन से मुक्त हो जाता है।

मैं शुक्ल संपन्न बनूं

आचार्य महाप्रज्ञ

रंग अनेक प्रकार के होते हैं—काला, पीला, लाल, हरा, बैंगनी आदि। शांति और उन्नति के लिए जिस रंग का महत्त्व है, वह शुक्ल या सफेद रंग है। साधना के क्षेत्र में कोई व्यक्ति आगे बढ़ता है तो निश्चित रूप से उसकी लेश्या शुभ होती है। तेजोलेश्या से आध्यात्मिक विकास शुरू होता है। बाल-सूर्य या अरुण रंग से आध्यात्मिक चेतना जागती है और विकास शुरू होता है। फिर पीला रंग आता है तो आध्यात्मिक विकास और आगे बढ़ जाता है। आध्यात्मिक विकास की उच्च कक्षा है—शुक्ल रंग। भाव शुक्ल, मन शुक्ल, विचार शुक्ल और आभामंडल भी शुक्ल। जिसका आभामंडल या औरा शुक्ल हो जाता है, वह व्यक्ति साधना की उच्च भूमिका पर होता है।

शुक्ल रंग का बड़ा महत्त्व होता है। जहां निर्मलता है, स्वच्छता है, पवित्रता है, उस और सभी आकृष्ट होते हैं। साधक लोग श्वेत वस्त्र धारण करते हैं यह रंग साधना में बहुत सहायक बनता है। महावीर के शिष्यों के लिए श्वेत वस्त्र का विधान था। इस तरह वस्त्र भी सफेद, आभामंडल भी सफेद, विचारधारा भी सफेद और भावधारा भी सफेद। पूरी तरह शुक्ल का वातावरण। इसलिए आध्यात्मिक विकास के लिए भावना करें—

शुक्लः संपन्नोऽहं स्याम्।

मैं शुक्ललेश्या से संपन्न बनूं। विचारों में बहुत बार मलिनता आती है। मलिनता के बहुत स्रोत हैं। शास्त्रों में अठारह पाप बताए गए हैं। ये सब मलिनता पैदा करने वाले हैं। हिंसा का भी रंग होता है। झूठ का भी रंग होता है। भगवती सूत्र का एक प्रसंग है—

गौतम स्वामी ने भगवान महावीर से पूछा—भंते। हिंसा का रंग है?

'हां, है।'

'सभी रंग हैं। चोरी का भी रंग है। अब्रह्मचर्य का भी रंग है। अपरिग्रह का भी रंग है। क्रोध का भी रंग है और अहंकार का भी रंग है। इस दुनिया में सभी कुछ रंगीन हैं। बिना रंग के कुछ भी नहीं है। ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जो बिना किसी रंग की हो। रंग कहीं व्यक्त होते हैं, कहीं अव्यक्त रहते हैं, किंतु हैं अनिवार्य रूप से।'

इस दुनिया में बेरंग कुछ भी नहीं है। बिना रंग की एक आत्मा है, मुक्तात्मा है। शरीरयुक्त आत्मा तो रंगों से भरी हुई है। शरीरयुक्त आत्मा या चेतना रंगों से बहुत प्रभावित होती है। इसलिए रंगों का चुनाव करते समय बहुत सावधानी की अपेक्षा होती है। आदमी अगर गहरे लाल रंग का कपड़ा धारण करता है तो गुस्सा आने लगेगा। रूस के एक विद्यालय में छात्र शरारत बहुत करते थे। आस-पास के अन्य विद्यालयों के छात्रों में इतनी अनुशासनहीनता नहीं थी। कारणों की खोज के लिए कई तरह के विशेषज्ञों और मनोवैज्ञानिकों की सेवाएं लीं गयी। उन्हीं में से एक था—''कलर मेडिटेशन'' का विशेषज्ञ। उसने समस्या का अध्ययन किया और प्रिंसिपल से कहा—'विद्यार्थियों की उद्दंडता का कारण मैं समझ गया। आपके विद्यालय की दीवारें, छत, दरवाजे और यहां तक कि खिड़कियों का भी रंग गहरा लाल है। यही छात्रों को उद्दंड बना रहा है। आप इस रंग का परिवर्तन करें, समस्या सुलझ जाएगी।'

विद्यालय के प्रिंसिपल ने दीवारों का रंग सफेद करवाया और दरवाजों पर नीले रंग के पर्दे डाल दिये। थोड़े ही दिन बाद विद्यार्थियों में आश्चर्यजनक परिवर्तन आ गया। समझदार आदमी हमेशा इस बात पर विचार करता है कि जहां मैं हमेशा कार्य करता हूं, सोता हूं, उठता हूं, बैठता हूं, वहां रंग कौन-सा है? रंग अगर गलत है तो दिशा भी निश्चित रूप से गलत हो जाएगी। लेश्या और भावधारा अगर शुक्ल रहती है तो सकारात्मक दृष्टि का विकास होता है। एक प्रकार से वीतरागता का विकास या वीतराग समकक्ष चेतना का विकास शुक्ल लेश्या में ही संभव है। इसलिए हर व्यक्ति को ललाट पर सफेद रंग का ध्यान करना चाहिए।

भिन्न-भिन्न प्रकृति के लोग होते हैं। कुछ महाक्रोधी स्वभाव के होते हैं। कुछ लोगों में लालच की प्रवृति ज्यादा होती है। ऐसे लोग शिविर में प्रयोग, प्रशिक्षण तथा ध्यान के द्वारा बहुत बड़ा परिवर्तन स्वयं में करते हैं। प्रेक्षाध्यान के प्रयोगों से यह सिद्ध हुआ है कि क्रोध को नियंत्रित और समाप्त किया जा सकता है ज्योतिकेन्द्र पर सफेद रंग का ध्यान और पूरे ललाट पर सफेद रंग का ध्यान करने पर क्रोध, आवेश और उत्तेजना शांत होती है। उत्तेजना को शांत करने का सबसे सुंदर उपाय है—सफेद रंग का ध्यान। अगर दस-बीस मिनट तक ललाट पर चंद्रमा को देख लें तो क्रोध शांत रहेगा। शिव के ललाट पर चंद्रमा है और सिर पर गंगा—ये दोनों इस बात के प्रतीक हैं कि शिव ने क्रोध पर विजय प्राप्त की थी। उनका मस्तक इतना

शीतल और शांत हो गया कि वे कालकूट जैसे विष को भी पचा गए। वे विषपायी हैं। वे विष पीकर अमृत देने वाले आशुतोष कहे जाते हैं। नाम ही उनका शिव, यानी श्रेयस है, जो कल्याण करने वाला है। गंगा, चन्द्रमा—ये सब शांति के प्रतीक हैं।

श्वेत रंग अनेक स्थितियों में उपयोगी बनता है। एक व्यक्ति आया और बोला—'शरीर से भाप निकल रही है। असह्य हो रहा है। लगता है शरीर जैसे धू-धू कर जल उठेगा। उसे कायोत्सर्ग की मुद्रा में सफेद रंग का ध्यान करने को कहा गया। थोड़ी देर बाद वह ठीक हो गया, ऊष्मा का प्रकोप शांत हो गया।

केवल रंग ही नहीं बदलो, शुक्ल बनो। एक है रंग और दूसरी है रंग से जुड़ी हुई भावधारा। शुक्ल भावधारा का व्यक्ति कभी दीर्घसूत्री नहीं होता। दीर्घसूत्री, यानी देर तक सोने वाला, आलसी या विलासी। काम अभी करना है और उसे कल के लिए टाल देगा। उसकी हरसंभव कोशिश कार्य टालने की होगी। समय बीतता जाएगा और उसका काम पूरा नहीं होगा। मैंने ऐसे व्यक्तियों को देखा है—'ठहरो, अभी गाड़ी तो आई ही नहीं और जब गाड़ी आकर चली गई तो स्टेशन पहुंचते हैं।' टिकट व्यर्थ जाता है। ऐसा एक-दो बार नहीं, कितनी ही बार होता है। ऐसे लोग दीर्घसूत्री की कोटि में आते हैं। महाभारत का एक सुंदर श्लोक है—

आध्यात्मिक विकास की उच्च कक्षा है—शुक्ल रंग। भाव शुक्ल, मन शुक्ल, विचार शुक्ल और आभामंडल भी शुक्ल। जिसका आभामंडल या ओरा शुक्ल हो जाता है, वह व्यक्ति साधना की उच्च भूमिका पर होता है। साधक लोग श्वेत वस्त्र धारण करते हैं यह रंग साधना में बहुत सहायक बनता है। महावीर के शिष्यों के लिए श्वेत वस्त्र का विधान था। इस तरह वस्त्र भी सफेद, आभामंडल भी सफेद, विचारधारा भी सफेद और भावधारा भी सफेद। पूरी तरह शुक्ल का वातावरण। इसलिए आध्यात्मिक विकास के लिए भावना करें- शुक्लः संपन्नोऽहं स्याम्। 'सभी रंग हैं। चोरी का भी रंग है। अब्रह्मचर्य का भी रंग है। अपरिग्रह का भी रंग है। क्रोध का भी रंग है और अहंकार का भी रंग है। इस दुनिया में सभी कुछ रंगीन है। बिना रंग के कुछ भी नहीं है। ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जो बिना किसी रंग की हो। रंग कहीं व्यक्त होते हैं, कहीं अव्यक्त रहते हैं, किंतु हैं अनिवार्य रूप से।'

अनागतविधाता च प्रत्युत्पन्नमतिश्च यः।
द्वावेव सुखमेधेते, दीर्घसूत्री विनश्यति।।

दुनिया में दो ही आदमी सफल होते हैं—एक वह आदमी, जो अनागत विधाता है, होने वाली घटना को पहले ही जान लेता है। अनुमान से या किसी प्रमाण से जान लेता है कि कल क्या होने वाला है और पहले ही उसका उपाय ढूंढ लेता है। वह आग लगने पर कुआं खोदने का प्रयास नहीं करता। वह पानी का प्रबंध पहले से ही कर लेता है। इस प्रकार की नीति वाला व्यक्ति सफल होता है।

दूसरा वह सफल होता है, जो प्रत्युत्पन्न मति वाला है। तत्काल रास्ता खोज लेने वाला होता है। उपायज्ञ होता है। सामने जो भी बात आई, तत्काल उसका समाधान कर लेता है। जिस व्यक्ति में ऐसा प्रातिभ ज्ञान और अंतर्ज्ञान विकसित है, वह प्रत्युत्पन्न मति वाला होता है और तत्काल समाधान खोज लेता है। इस प्रकार ये दो ही लोग सफल होते हैं। दीर्घसूत्री हमेशा विनाश को प्राप्त होता है।

मैनेजमेंट की एक किताब में सफलता के सूत्रों की चर्चा की गयी है। उसमें बताया गया है कि ऐसा जो कहते हैं कि चिंता की क्या बात! हो जाएगा। वे अपने काम में असफल हो जाते हैं। सफलता के लिए जरूरी है—तत्परता। वह उसमें ही अपनी सारी शक्ति का नियोजन कर देता है। उसे अपने काम में एक मात्र सफलता दिखाई देती है। वह न आशंकित होता है, न भयभीत होता है। काम शुरू किया है तो इसे अंजाम तक पहुंचाए बिना नहीं रहूंगा—इस तरह का चिंतन सफलता की सीढ़ी तैयार करता है।

सफलता के लिएमंगलभावना भी जरूरी है। ऐसी मंगलभावना, जिससे हमारा आभामंडल भी पवित्र बन जाए। स्थूल जगत् की घटना और सूक्ष्म जगत् की घटना—दोनों को हमें पढ़ना चाहिए। स्थूल जगत् में कुछ दिखाई दे रहा है और सूक्ष्म जगत् में कुछ घट रहा है। आभामंडल के अध्येता की दृष्टि बहुत सूक्ष्म हो जाती है। कुछ लोग कहते हैं—कैंसर था, जब भीतर ही भीतर फैल गया, तब पता चला। आभामंडल सिद्धांत के अनुसार कोई भी बीमारी स्थूल शरीर में होती है, वह भीतर में तीन महीने पहले ही काम करना शुरू कर देती है। तीन महीने के बाद वह स्थूल

शरीर में प्रकट होती है, तब तक बहुत देर हो चुकी होती है। इसलिए यह जरूरी है कि जब भी आपके मन में कुछ अनपेक्षित और विस्मयकारी घटित हो, सचेत हो जाएं। हम सूक्ष्म जगत् को भी पढ़ने का अभ्यास करें।

प्रेक्षाध्यान में गहरी एकाग्रता के लिए एक प्रयास है कि हम स्थूल जगत् की सीमा में अटके नहीं रह सकते, सूक्ष्म जगत् में भी हमारा प्रवेश हो सकता है। जो व्यक्ति स्थूल जगत् में ही अटका रहता है, केवल इन्द्रियों के ज्ञान पर सारा काम करता है, वह दूरदर्शी नहीं हो सकता और सफल भी नहीं हो सकता।

एक छोटी-सी पुस्तिका जिसे पूर्व-राष्ट्रपति ए.पी.जे. अब्दुल कलाम ने विद्यार्थियों के लिए लिखी है, वह पुस्तक केवल विद्यार्थियों के लिए ही नहीं, जो भी अपने जीवन में सफल होना चाहता है, उस व्यक्ति के लिए वह उपयोगी है, सफलता की कुंजी है। बीस-तीस पृष्ठ की पुस्तक में सफलता के सोपान तक पहुंचाने वाले महत्त्वपूर्ण सूत्र हैं। पुस्तक शुरू होती है-'विजन इज वेरी इम्पॉर्टेंट', इस वाक्य से।

जिसमें विजन नहीं है, वह कोई बहुत बड़ा काम नहीं कर सकता। वजन और इमेजिनेशन-ये सफलता के दो बड़े सूत्र हैं। जो कल्पनाशील व्यक्ति है, वह बड़ी बात को देख लेता है। उस पुस्तक में एक घटना का विवरण दिया गया है। जमशेदपुर में टाटा का स्टील प्लांट है। जमशेद टाटा जब उस स्थान पर लोहे का कारखाना शुरू करने जा रहे थे, दूसरे देश के विशेषज्ञों ने उनका बहुत मखौल उड़ाया था। उन्हें विश्वास ही नहीं था कि भारतीय लोग इतना बड़ा कारखाना चला सकते हैं, स्वयं लोहे का उत्पादन कर सकते हैं। अब तो स्थिति काफी बदल गई, किंतु आजादी के पहले भारतीयों के बारे में दूसरे लोगों की धारणा अच्छी नहीं थी। इतनी बड़ी आबादी वाला मुल्क गुलाम हो जाए, इस बात का प्रतीक था कि भारतीयों में अपने बलबूते पर खड़ा होने की ताकत और सामर्थ्य नहीं है। इसलिए जमशेदजी टाटा ने जब देश में पहली बार स्वदेशी तकनीक पर आधारित स्टील प्लांट लगाने का निश्चय किया तो अंग्रेजों और दूसरे लोगों ने उनका मखौल उड़ाया था।

लेश्या और भावधारा अगर शुक्ल रहती है तो सकारात्मक दृष्टि का विकास होता है। एक प्रकार से वीतरागता का विकास या वीतराग समकक्ष चेतना का विकास शुक्ल लेश्या में ही संभव है। इसलिए हर व्यक्ति को ललाट पर सफेद रंग का ध्यान करना चाहिए। शिव के ललाट पर चंद्रमा है और सिर पर गंगा-ये दोनों इस बात के प्रतीक हैं कि शिव ने क्रोध पर विजय प्राप्त की थी। उनका मस्तक इतना शीतल और शांत हो गया कि वे कालकूट जैसे विष को भी पचा गए। वे विषपायी हैं। वे विष पीकर अमृत देने वाले आशुतोष कहे जाते हैं। नाम ही उनका शिव, यानी श्रेयस है, जो कल्याण करने वाला है। गंगा, चन्द्रमा-ये सब शांति के प्रतीक हैं। प्रेक्षाध्यान में गहरी एकाग्रता के लिए एक प्रयास है कि हम स्थूल जगत् की सीमा में अटके नहीं रह सकते, सूक्ष्म जगत् में भी हमारा प्रवेश हो सकता है। जो व्यक्ति स्थूल जगत् में ही अटका रहता है, केवल इन्द्रियों के ज्ञान पर सारा काम करता है, वह दूरदर्शी नहीं हो सकता और सफल भी नहीं हो सकता।

किंतु टाटा का एक विजन था, एक संकल्प था। उन्होंने उसे क्रियान्वित किया और आज टाटा स्टील या टाटा के लोहे का सारी दुनिया लोहा मानती है। उन्हीं से प्रेरणा प्राप्त कर पंडित नेहरू ने सरकारी उपक्रम के रूप में भिलाई और राउरकेला में दो स्टील प्लांट लगवाए।

एक बात समझ लें कि ऊंचे काम तब होते हैं, जब आदमी का दिमाग कलह-कदाग्रह और लड़ाई-झगड़े से विरत होता है। बहुत से लोग ऐसे हैं जो स्वभाव से ही विघ्न-करने वाले होते हैं। उनका दिमाग चौबीस घंटे विरोध और झगड़े में ही रहता है। इस तरह का कोई भी मौका मिलने पर वे चूकते नहीं। ऊंचे कामों की उम्मीद उन्हीं से की जा सकती है, जिनका मस्तिष्क सृजनात्मक है, रचनात्मक है, जो नित नई कल्पनाएं करते हैं, जिनके पास दृष्टि है और जो व्यर्थ के विवादों में रस नहीं लेते। तनाव से भरे लोगों से किसी सृजनात्मक कार्य की आशा नहीं की जानी चाहिए।

बहुत आवश्यक है कि व्यक्ति अनागत विधाता और प्रत्युत्पन्न मति बने। यह काम सरल नहीं है। कुछ ही लोगों को प्रकृति की यह अनुपम सौगात मिलती है। आचार्य भिक्षु प्रत्युत्पन्न मति के व्यक्ति थे। दूसरे शब्दों में कहें तो वे औत्पत्तिकी बुद्धि वाले थे। कोई भी बात, कोई भी प्रश्न सामने आता, उसका तुरन्त जवाब और समाधान मिल जाता। हम प्रेक्षाध्यान के द्वारा स्थूल से सूक्ष्म की ओर प्रस्थान कर रहे हैं। योग के ग्रंथों में बहुत सुंदर लिखा

शेषांश पृष्ठ 22 पर

प्रशस्त जीवनशैली के आयाम

आचार्य महाश्रमण

दुनिया के सभी प्राणी जीना चाहते हैं। मरना कोई नहीं चाहता। कभी-कभी विवशतावश या परिस्थितिवश उन्हें मृत्यु का वरण करना पड़ता है, किन्तु सामान्यतया व्यक्ति जीना चाहता है। वह मात्र जीना ही नहीं चाहता, सुखी भी रहना चाहता है।

एक सुख वह होता है जो बाहर के निमित्तों से मिलता है, जैसे गर्मी के समय पंखा, कूलर आदि सुविधाओं के योग से मिलने वाला सुख। एक सुख आदमी के भीतर के साथ जुड़ा हुआ होता है जिसे मानसिक, भावात्मक या आत्मिक-सुख भी कहा जा सकता है। बाहर से सब सुविधाएं मिलने पर भी कई बार आदमी भीतर से दुःखी रहता है। बाहर की सुविधा एक बात है और भीतर की शान्ति मिलना दूसरी बात है। आदमी की जीवनशैली अच्छी हो तो वह सुखी जीवन जी सकता है-

मनुष्य एक उच्च कोटि का आदमी है इसलिए उसकी जीवनशैली भी विशिष्ट होनी चाहिए। विशिष्ट जीवनशैली के लिए कुछ सूत्र हो सकते हैं-

पहला सूत्र है-ईमानदारी के प्रति निष्ठा। आदमी के मन में नैतिक मूल्यों के प्रति, सच्चाई के प्रति, प्रामाणिकता के प्रति निष्ठा जाग जाए। उसमें वह आस्था जाग जाए कि कोई भी कठिनाई आएगी तो उसे झेल लूंगा, ईमानदारी को नहीं छोड़ूंगा। ईमानदारी की दो बाधाएं हैं-असत्य और चौर्य। जहां असत्य और चौर्य है, वहां बेईमानी है। आदमी मृषावाद और चोरी की वृत्ति से बचने का प्रयास करे। कभी-कभी आदमी धोखा देने का भी प्रयास करता है। और तो क्या, देवी-देवताओं को भी धोखा दे देता है। एक आदमी के सामने भयंकर विपत्ति आ गई। उसने अपने इष्ट को याद किया और प्रार्थना की-'हे प्रभो! मुझे इस विपत्ति से बचा लो। मैं आपको प्रसाद चढ़ा दूंगा।' संयोग की बात, वह विपत्ति से बच गया। उसने खजूर खरीदे और अपने इष्टदेव के मन्दिर में गया। उसने सोचा कि ऊपर की चीज को क्या चढ़ाना है, भीतरी भाग चढ़ाना चाहिए। इसलिए खजूर की गुठलियां तो चढ़ा दीं और ऊपर का भाग स्वयं खा गया। कुछ समय बीता, फिर विपत्ति आ गई। फिर उसने अपने इष्टदेव को याद किया और बचाने की प्रार्थना की। आस्था या संकल्प का ही प्रभाव समझना चाहिए, वह फिर बच गया। इस बार उसने केले खरीदे और प्रसाद चढ़ाने मन्दिर गया। उसने सोचा, पिछली बार भीतरी भाग चढ़ाया था, इस बार ऊपर का भाग चढ़ा देता हूं। उसने छिलके चढ़ा दिए और केले स्वयं खा गया। इस प्रकार आदमी भगवान को भी धोखा दे देता है।

अगर शान्तिमय जीवन जीना है तो धोखा, बेईमानी को छोड़ना होगा और ऋजुता व सरलता को स्वीकार करना होगा। सरलता और ईमानदारी, दोनों एक ही बात हैं। सरलता नहीं है तो फिर ईमानदारी का रहना भी संभव नहीं होगा। इसलिए ऋजुता और प्रामाणिकता, दोनों में अभिन्नता अथवा परम नैकट्य माना गया है। ईमानदारी शुद्ध, निर्मल और शान्तिमय जीवन का पहला और प्रमुख सूत्र है।

दूसरा सूत्र है-संवेग संतुलन, आक्रोश संयम। आदमी को यदा-कदा, चाहे-अनचाहे गुस्सा आ जाता है, परन्तु उसमें इतनी क्षमता का विकास होना चाहिए कि प्रतिकूल स्थिति में भी वह शान्त रह सके। जब व्यक्ति के चेहरे पर आक्रोश की रेखाएं छा जाती हैं, तब उसका सुन्दर चेहरा भी विकृत बन जाता है। वे लोग धन्य हैं, जो सदा शान्त रहते हैं और जिनके चेहरे पर अनुकूल-प्रतिकूल, हर परिस्थिति में मुस्कान देखने को मिलती है।

परिवार में समस्याएं उत्पन्न होती रहती हैं। उसका एक कारण है- सहनशक्ति का अभाव। जिनको साथ में जीना हो और एक-दूसरे को सहन करने की क्षमता न हो तो वे शान्तिमय जीवन कैसे जी पायेंगे? एक बाईस वर्षीय युवक के मन में विकल्प उठा कि मैं शादी करूं या नहीं? उसने सोचा, इस विषय में मुझे किसी दिव्य पुरुष से परामर्श लेना चाहिए। वह सन्त कबीर के पास गया और बोला-सन्तप्रवर! मैं आपके पास एक परामर्श मांगने आया हूं कि मुझे शादी करनी चाहिए या नहीं? कबीर ने कहा-युवक! तुम कुछ देर यहीं बैठो, फिर बात करेंगे। कबीर ने अपनी पत्नी से कहा-जरा, लालटेन जलाना। मध्याह्न का समय था फिर भी बिना कोई प्रश्न किए उसने लालटेन जला कर रख दी। कुछ देर बाद कबीर ने दो गिलास दूध लाने का आदेश दिया। पत्नी ने एक गिलास कबीर को और एक गिलास अतिथि को पकड़ा दी। कबीर

दूध पीते गए और पत्नी की प्रशंसा करते गए। युवक भी दूध पीने लगा, किन्तु पी नहीं सका, क्योंकि उसमें नमक डाला हुआ था। वह वहां से उठकर जाने लगा, तब कबीर ने कहा—युवक! कहां जा रहे हो ? युवक ने कहा—मैं तो आपके पास परामर्श लेने आया था, किन्तु आप तो बेहुदी बातें कर रहे हैं। कबीर ने कहा—मैं तो तुम्हारे प्रश्नों का ही जवाब दे रहा हूं। मैंने मध्याह्न में लालटेन जलाने के लिए कहा तो पत्नी ने बिना किसी तर्क के लालटेन जला दी, यानी मेरी हरकत को उसने सहन किया। उसने दूध में नमक डाला तो मैंने भी उसे शान्त भाव से पी लिया। उस पर आक्रोश नहीं किया। युवक! अगर पत्नी की हरकतों को सहन कर सको तो शादी करना, अन्यथा बाबा बन जाना। मेरा तो मानना है कि गलती करने पर अंगुली-निर्देश भी करना चाहिए, किन्तु साथ में सहन करने का माद्दा भी होना चाहिए तभी व्यक्ति शान्तिमय जीवन जी सकता है। एक सूत्र बन गया—सहना चाहिए, मौके पर कहना भी चाहिए और शान्ति के साथ रहना चाहिए।

तीसरा सूत्र है—संयम। आदमी में संयम का विकास होना चाहिए। जहां-जहां इसमें कमी रहती है, वहां-वहां समस्या खड़ी हो जाती है। अपेक्षित संयम के अभाव में व्यक्ति का पूरा विकास नहीं हो सकता। आदमी में कठोर जीवन जीने का भी माद्दा होना चाहिए। उसके खान-पान, रहन-सहन में भी संयम होना चाहिए। संयम के अभाव में वह अखाद्य खा लेता है और अपेय पी लेता है। खान-पान के असंयम के कारण वह अनेक समस्याओं को निमंत्रण दे देता है, अनेक बीमारियां उससे ग्रसित हो जाती हैं। शरीर के अनेक अवयव अव्यवस्थित हो जाते हैं। इसलिए आदमी कुछ त्याग, नियमों को स्वीकार करे। अपने जीवन में संयम को महत्त्व दे। वह संयम को जीवन का भार न माने अपितु शृंगार माने, उपहार माने। आदमी विचारों में भी संयम रखे। अनावश्यक चिन्तन न करे और किसी के बारे में गलत न सोचे, निषेधात्मक विचारों को स्थान न दे। यदि जीवन में संयम का अवतरण हो जाता है तो आदमी शान्तिमय जीवन जी सकता है।

आदमी कुछ त्याग, नियमों को स्वीकार करे। अपने जीवन में संयम को महत्त्व दे। वह संयम को जीवन का भार न माने अपितु शृंगार माने, उपहार माने। आदमी विचारों में भी संयम रखे। अनावश्यक चिन्तन न करे और किसी के बारे में गलत न सोचे, निषेधात्मक विचारों को स्थान न दे। यदि जीवन में संयम का अवतरण हो जाता है तो आदमी शान्तिमय जीवन जी सकता है। *अगर शान्तिमय जीवन जीना है तो धोखा, बेईमानी को छोड़ना होगा और ऋजुता व सरलता को स्वीकार करना होगा। सरलता और ईमानदारी, दोनों एक ही बात हैं। सरलता नहीं है तो फिर ईमानदारी का रहना भी संभव नहीं होगा। इसलिए ऋजुता और प्रामाणिकता, दोनों में अभिन्नता अथवा परम नैकट्य माना गया है। ईमानदारी शुद्ध, निर्मल और शान्तिमय जीवन का पहला और प्रमुख सूत्र है।*

चौथा सूत्र है—समय-नियोजन। व्यक्ति की दिनचर्या ठीक होनी चाहिए। कई बार अव्यवस्थित दिनचर्या के कारण करणीय कार्य छूट जाते हैं और समय बीत जाता है। आदमी को योजनाबद्ध कार्य करना चाहिए। हर आदमी को 24 घण्टे का समय मिलता है। उसमें से कुछ समय चेतना के लिए भी लगाना चाहिए। आदमी केवल शरीर के आस-पास ही न रहे, आत्मा के आस-पास रहने का भी अभ्यास करे। यदि आदमी का संकल्प हो तो कुछ समय चेतना के लिए निकाला जा सकता है। आवश्यकता इस बात की है कि उसको प्राथमिकता दी जाए। मैं तो सोचता हूं कि आदमी को सोने-जागने का समय निश्चित रखना चाहिए। यदि दोनों न बैठ सकें तो कम-से-कम एक समय तो निश्चित रखना ही चाहिए। गुरुदेव तुलसी को मैंने देखा, उनके सोने में देरी हो जाती थी, किन्तु उनके जागने का समय निश्चित था। वे प्रातः चार बजे विराजमान हो जाते थे। आचार्य महाप्रज्ञ भी अपने समय को प्रायः पूर्ण नियोजित रखते थे। किस समय कौनसा कार्य करना चाहिए, यह ध्यान देकर समय-नियोजन करना चाहिए। आदमी अपनी दिनचर्या को व्यवस्थित रखे और कुछ समय अध्यात्म-चेतना के लिए भी लगाए तो शान्तिमय जीवन जी सकता है।

आदमी में ईमानदारी के प्रति निष्ठा जाग जाए, संवेगों पर नियंत्रण करना सीख ले, संयम का भाव पुष्ट हो जाए और समय-नियोजन करना सीख ले तो जीवनशैली विशिष्ट अथवा प्रशस्त बन सकती है और वह शान्तिमय, सुखमय जी सकता है।

भावधारा विशुद्धि का संदेश

आचार्य महाप्रज्ञ

यह वसुंधरा रत्नों की खान है। यहां पद-पद पर विधान है। प्रत्येक योजन पर रसकूपिका है किन्तु जो भाग्यहीन हैं, तो रत्न दिखाई नहीं देते।

पद पदे निधानानि, योजने रसकूपिका।
भाग्यहीना न पश्यंति, बहुरत्ना वसुंधरा।।

पग-पग पर निधान गढ़े हुए हैं। लोग खजाना पाने के लिए भूमि को खोदते हैं। कौन-सा स्थान है, जहां निधान नहीं है? योजने रसकूपिका—प्रत्येक योजन पर, चार कोस पर, एक रसकूपिका है। रसकूपिका वह होती है जिससे लोहे का स्पर्श कराया और लोहा सोना बन गया। किन्तु वह कभी दिखाई क्यों नहीं देती? इसलिए दिखाई नहीं देती कि देखने की दृष्टि तुम्हें कहां मिली है? वह भाग्य कहां मिला है, जो दिखाई दे।

सूरज आकाश में है। किसी जन्मांध व्यक्ति को कहा जाए—देखो सूरज आ गया है? वह कैसे देखेगा? देख नहीं पाएगा। जैसे जन्मांध व्यक्ति आकाश में चमकते हुए सूरज को नहीं देख पाता वैसे ही सब कुछ है पर देखना बड़ा मुश्किल है। आत्मा, परमात्मा, ईश्वर, भगवान कुछ भी कहें, हमारे भीतर है। इसमें कोई संदेह नहीं है पर हम देख नहीं पा रहे हैं। जब, जिस क्षण में हमारा मन एकाग्र होता है, धर्म-ध्यान में होता है, जब-जब भाव की विशुद्धि होती है, भावनाएं पवित्र होती है, लेश्या पवित्र होती है तब हम भगवान का दर्शन, आत्मा का दर्शन और परमात्मा का दर्शन कर सकते हैं। हम आज भी आत्मा का साक्षात्कार कर सकते हैं यदि हमारे भीतर पवित्रता व धार्मिकता हो। व्यक्ति को सबसे ज्यादा जिस बात पर ध्यान देना है, वह है, 'लेश्या विशुद्धि' या 'भाव विशुद्धि'। अगर लेश्या का सिद्धांत समझ में आ जाए तो अनेक समस्याएं स्वतः समाहित हो जाए। जो व्यक्ति भाव विशुद्धि रखता है, यदि उसके जीवन में दस बड़ी बीमारी भोगने का योग है तो नौ तो ऐसे ही कहीं चली जाएगी, हो सकता है—दसों ही चली जाए। कोई काम कठिन लग रहा है, सफलता नहीं मिल रही है। लगता है—वह सफलता बीस वर्ष बाद मिलेगी। यदि भाव पवित्र है तो हो सकता है कि एक वर्ष में ही सारा काम हो जाए। बात है—भावना को विशुद्ध रखना। कई बार बहुत बुरे विचार आते हैं, बुरी भावनाएं आती हैं। कभी आत्महत्या का, कभी दूसरे को मारने का, कभी चोरी करने का, पता नहीं क्या-क्या विचार आते हैं। यह मनोविज्ञान का एक विषय बन गया। नकारात्मक दृष्टिकोण बनता रहता है और बिना मतलब बुरे विचार आ जाते हैं। इसलिए लेश्या के सिद्धांत को समझना बहुत जरूरी है।

व्यक्ति को सबसे ज्यादा जिस बात पर ध्यान देना है, वह है 'लेश्या विशुद्धि' या 'भाव विशुद्धि'। अगर लेश्या का सिद्धांत समझ में आ जाए तो अनेक समस्याएं स्वतः समाहित हो जाए।
व्यक्ति को सबसे ज्यादा जिस बात पर ध्यान देना है, वह है, 'लेश्या विशुद्धि' या 'भाव विशुद्धि'। अगर लेश्या का सिद्धांत समझ में आ जाए तो अनेक समस्याएं स्वतः समाहित हो जाए।
जिसकी कोई स्पृहा नहीं, जिसके मन में कोई आकांक्षा नहीं, जिसके मन में कोई चाह नहीं, उसके सामने कोई राजा हो या सम्राट, चक्रवर्ती हो या देवता—कोई अंतर नहीं आता। चाहे स्वयं इन्द्र भी आ जाए, उसके मन में कंपन नहीं होता। ये सब कंपन उनके लिए होते हैं जिनके मन में कोई चाह होती है। जो चाह से परे चला गया, उसके लिए न कोई छोटा और न कोई बड़ा होता है।

आजकल लोग कहते हैं—जमाना बहुत बुरा है। बहुत आतंक हो गया। प्रश्न है, कब नहीं रहा? कोई भी जमाना ऐसा नहीं रहा जिस समय पर भय, आंतक, लूट, छीना-झपटी न रही हो। रूप बदलता रहता है। आज थोड़ा रूप बदल गया। प्राचीन काल में कितनी लूट-खसोट चलती थी। आचार्य भिक्षु जब मारवाड़ में थे

तब धाड़ आई थी। धाड़ का मतलब है—जो बड़े-बड़े ठाकुर होते, वे सदल-बल जाते और गांव को लूट लेते। सेना आती और सेना गांव को लूट लेती। यह बहुत चलता था। आदमी का स्वभाव बदला नहीं है, जैसा दो सौ वर्ष पहले था, वैसा आज है। जैसा दो सौ वर्ष पहले था, वैसा दो हजार वर्ष पहले भी था। आदमी सदा बुराइयां करता रहा है, क्रूरता करता रहा है। यदि हम प्रश्न व्याकरण सूत्र को पढ़ें तो पता चलता है कि आदमी कितनी क्रूरताएं करता था। इसमें व्यक्ति की क्रूर वृत्ति का सजीव चित्र खींचा गया है। वृत्तियां पहले भी थीं, आज भी हैं।

राजा अरिदमन ने दूसरे राज्य पर आक्रमण किया, उसने विजय पा ली। वह पुनः सेना के साथ आ रहा है, नगर अभी थोड़ा दूर है। अचानक राजा के मन में एक भाव की तरंग उठ गई। उसके मन में राग की तरंग उठी—अब मैं जल्दी जाऊं। अपनी प्रिय महारानी से मिलूं। राजा ने सेना को पीछे छोड़ दिया और अकेला ही बहुत आगे बढ़ गया। वह सेना से बहुत पहले पहुंचा। उसने देखा—नगर एकदम सजाया हुआ है। जब राजा लोग विजय कर आते थे तब प्रजाजन नगर को सजाते थे। राजा ने देखा—नगर ही नहीं, अंतःपुर भी सजाया हुआ है। महारानी तैयार खड़ी है दरवाजे पर। राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ कि यह कैसे? उसने महारानी से पूछा—'यह पहले सजावट कैसे कर दी, किसने सूचना दी? मैंने तो कोई सूचना नहीं दी थी। सेना के पहुंचने में अभी तीन दिन की देरी है। पहले ही यह सज्जा कैसे कर दी? किसने बताया? किसने सूचना दी?'

महारानी बोली—'महाराज! यहां एक साधु आए हुए हैं, उनका नाम कीर्तिधर है। बड़े ज्ञानी मुनि हैं। मैं उनके पास गयी थी। उनकी उपासना में बैठी थी। मैंने पूछ लिया—'महाराज! मेरा पति युद्ध में गया हुआ है, क्या विजयी होगा? वह कब आयेगा?' मुनि ने कहा—उसने युद्ध जीत लिया है। वह आज के दिन आयेगा और अकेला आएगा।' राजा ने कहा—'साधु इतना बड़ा ज्ञानी है, जो पहले की बात बता देता है। तुम उस साधु को बुलाओ। ' अधिकारी मुनि के पास गए, विनम्रता के साथ साधु से बोले—'महाराज बुला रहे हैं।'

साधु बोला—'कौन महाराज होता है?' महाराज तो हम हैं।'

'मुनिश्री! इस पृथ्वी का मालिक, इस नगर का, देश का मालिक। जो राजा है, वह आपको बुला रहा है।'

मुनि स्पष्ट शब्दों में बोले—'मालिक अपना-अपना होता है। मैं तो अपनी आत्मा का मालिक हूं और किसी का मालिक नहीं हूं। कह दो—मैं नहीं आऊंगा।'

साधु फक्कड़ होते हैं। उनको किसका डर? सिकंदर ने एक साधु से कहा था—'मेरे साथ चलो।'

साधु बोला—'नहीं चलूंगा।' सिकंदर ने दो-तीन बार कहा पर साधु का यही उत्तर रहा—नहीं चलूंगा। सिकंदर अहंकार में आ गया, बोला—'देखते हो, सामने कौन खड़ा है?'

'आदमी खड़ा है।'

'मेरा नाम है सम्राट सिकन्दर। यह देखो तलवार। या तो चलो, नहीं तो सिर काट दूंगा।'

साधु निर्भयता से बोला—'किसका सिर काट दोगे। तुम मार नहीं सकते।' ऐसी ओजस्विनी वाणी थी कि सिकन्दर कांप गया। सबको कंपाने वाला सिकन्दर एकदम आंदोलित हो गया। वह झुका, पैरों में गिरा, बोला—'महाराज! ठीक है।' फिर खड़ा हुआ बौर बोला—'अब आप कहिए—मैं आपकी क्या सेवा करूं?' मुनि बोले—'यह धूप आ रही है। तू आगे से हट जा। बस यही सेवा है।'

जिसकी कोई स्पृहा नहीं, जिसके मन में कोई आकांक्षा नहीं, जिसके मन में कोई चाह नहीं, उसके सामने कोई राजा हो या सम्राट, चक्रवर्ती हो या देवता—कोई अंतर नहीं आता। चाहे स्वयं इन्द्र भी आ जाए, उसके मन में कंपन नहीं होता। ये सब कंपन उनके लिए होते हैं जिनके मन में कोई चाह होती है। जो चाह से परे चला गया, उसके लिए न कोई छोटा और न कोई बड़ा होता है।

मुनि कीर्तिधर पहुंचे हुए संत थे। वे बोले—'राजा से कह दो मुनि कीर्तिधर नहीं आ सकते।'

राजा स्वयं गया, नमस्कार किया और बोला—'महाराज! आप पहले की बात जान लेते हो, दूर की बात जान लेते हो और मन की बात जान लेते हो। मैंने यह महारानी से सुना है।'

'हां, राजन्! यह कोई खास बात नहीं है।'

'महाराज! आप बताएं कि मैं अभी क्या सोच रहा हूं, अभी मेरे मन में क्या है?'

बड़ा जटिल होता है प्रश्न। जैसे भगवान् महावीर के सामने एक व्यक्ति आया, हाथ में एक तिनका ले लिया और पूछा—मैंने सुना है कि तुम बड़े ज्ञानी हो। तुम बताओ कि मैं तिनका तोड़ूंगा या नहीं? अब क्या बताए? अगर कह दे तोड़ेगा, तो नहीं तोड़ेगा। अगर कह दे कि नहीं तोड़ेगा तो लो यह तोड़ा। राजा ने पूछा—'महाराज! आप बताएं—अभी मैं मन में क्या-क्या सोच रहा हूं?'

साधु ने कहा—'राजन्! रहने दो, क्या करोगे?'

'नहीं, मुझे जानना है।'

मुनि कीर्तिधर बोले—'राजन्! तुम अपने मरण के बारे में सोच रहे हो। मेरी मृत्यु कब होगी? यह तुम्हारा प्रश्न है।' राजा ने दोनों कान पकड़ लिए, सोचा—है तो यह चमत्कारी बाबा।

राजा बोला—'महाराज! यही बात मैं सोच रहा था। अब आप यह भी बता दें कि मैं कब मरूंगा?'

राजा ने प्रश्न कर दिया—'महाराज! बताएं कि मृत्यु कब होगी?' ऐसी जिज्ञासा का उत्तर देना बड़ा कठिन होता है क्योंकि अप्रिय बात कहे तो सामने वाले व्यक्ति को बड़ी चोट लगती है। जब कोई प्रसंग आ जाता है तब सामान्य मुनि तो बता नहीं सकता। सामान्य मुनि के लिए ये सब बताना निषिद्ध है किन्तु जो विशिष्ट ज्ञानी होते हैं, अष्टांग निमित्त को जानने वाले होते हैं, वे कभी-कभी कोई घटना, विशेष प्रसंग पर बता देते हैं। मुनि कीर्तिधर ने बता दिया—'राजन्! तुम एक सप्ताह के बाद मरोगे।'

'मुनिवर! मेरी मौत का कारण क्या बनेगा?'

मुनि कीर्तिधर ने कहा—'राजन्! बादल मंडराएंगे, घटाएं उमड़ेगी, वर्षा होगी, बिजली कौंधेगी। बिजली तुम्हारे सिर पर गिरेगी और तुम मर जाओगे। 'विद्युतपातेन'—बिजली गिरने से तुम्हारी मौत होगी।'

जहां सत्यापन होता है, वहां श्रद्धा तो स्वयं हो जाती है। जो बात को प्रमाणीकृत कर देते हैं, सत्यापित कर देते हैं, वे श्रद्धेय बन जाते हैं। सत्यापन के साथ श्रद्धा पैदा होती है। यह एक प्राकृतिक नियम है, सिद्धांत है, जिनका महावीर ने प्रतिपादन किया—सब जीव जीना चाहते हैं, मरना कोई नहीं चाहता। चाहे कितनी भी बुरी अवस्था में है, व्यक्ति मरना नहीं चाहता।' प्रज्ञापना सूत्र का यह एक सूक्त है—आदमी जिस लेश्या में मरता है, उसी लेश्या में पैदा होता है। इसी का संवादी वाक्य अथवा अनुवाद है—अंत मति, सो गति—अंतिम समय में जो मति रहती है वैसी गति हो जाती है। बड़ा महत्त्वपूर्ण प्रश्न है कि आदमी किस लेश्या में मरता है? किस भाव में मरता है? अगली गति का निर्धारण बहुत कुछ इस पर निर्भर रहता है। यही प्रश्न राजा प्रियंकर ने मुनि कीर्तिधर से पूछा। मुनि ने इस प्रश्न का जो उत्तर दिया, उसमें भावधारा और लेश्या की विशुद्धि का महान् संदेश निहित है।

मुनि कीर्तिधर ने घोषणा कर दी पर बात समाप्त नहीं हुई।

राजा ने सोचा—ऐसा बताने वाला कोई मिलेगा? उसने अगला प्रश्न पूछ लिया—'महाराज! मरने के बाद मैं क्या बनूंगा? कहां कहां जाऊंगा?'

मुनि ने सोचा—यह बहुत जटिल प्रश्न है। सही बताऊं तो सबको बड़ा अप्रिय लगेगा। झूठ बोलने का कोई मतलब नहीं है। मौन रहूं तो यह समझेगा कि बस इतना ही जानता था इसलिए मौन हो गये। कहीं-कहीं मौन भी खतरनाक होता है। समाधायक कहीं मौन हो जाए तो व्यक्ति कह देता है—जानते नहीं हो इसलिए मौन हो गए। पहले इतना बोले, अब बताओ तो पता चले।

आचार्य भिक्षु से किसी ने प्रश्न पूछा—'भीखणजी! तुम बड़े बुद्धिमान हो। तुम्हारी बड़ी प्रशंसा सुनी है। तुम मेरे प्रश्न का उत्तर दो।'

स्वामीजी बोले—'बोलो, भाई! क्या है तुम्हारा प्रश्न?'

'स्वामीजी! बताओ, घोड़े के पैर कितने होते हैं?'

भिक्षु स्वामी बोले—'एक, दो, तीन...... चार होते हैं।?'

'स्वामीजी! हमने तो सुना है कि तुम इतने बुद्धिमान हो। एक छोटा बच्चा भी सीधा उत्तर दे देता—चार। तुम गिनते हो—एक, दो, तीन चार। बड़ी विचित्र बात है।'

भिक्षु स्वामी बोले—'मैं सीधा उत्तर दे देता कि घोड़े के पैर चार होते हैं तो तेरा अगला प्रश्न होता—बताओ कनखजूरे (कांसला) के पैर कितने होते हैं तब मुझे सोचना पड़ता। उस समय तुम कहते—पहले तो जल्दी बोले गए, अब बताओ तो पता चले।'

वह व्यक्ति बोला—'भीखणजी! मैं सोचकर तो यही आया था।'

यह प्रश्न और उत्तर की बात बड़ी जटिल होती है। मौन रहना भी ठीक नहीं है और कुछ कहे तो जटिलता भी है।

राजा ने पूछ लिया—'महाराज! बताएं, मरने के बाद मेरी गति क्या होगी?' मुनि निस्पृह थे। उन्हें कोई चिंता नहीं थी और प्रसंग भी ऐसा था कि बताना जरूरी लगा। मुनि कीर्तिधर ने कहा—'राजन्! यह सामने अकूरड़ी है। तुम

मरकर इस अकूरड़ी में एक द्वीन्द्रिय–दो इन्द्रिय वाला कीट बनोगे।

राजा एकदम कांप उठा। कहां तो राजमहल में रहने वाला, पूरे देश का शासन करने वाला, जिसके पास गजसेना, रथ सेना, अश्व सेना, पैदल सेना–चतुरंगिणी सेना। हजारों, लाखों आदमी राजा की कृपा को ताकते रहते हैं। वह राजा मरने के बाद इस अकूरड़ी में कीड़ा बनेगा? कितनी भयंकर बात है? सुनने वाले भी कांप जाते हैं, क्या ऐसा होता है? क्या ऐसा होगा? मुनि कीर्तिधर ने इतना स्पष्ट बता दिया फिर भी राजा का मोह कम नहीं हुआ। उसे यह बात बहुत अप्रिय लगी और अविश्वसनीय भी। उसका मोह भयंकर बना रहा किन्तु हुआ वही। सप्ताह बीता। आकाश बादलों से घिर गया। वर्षा बरसी। बादल खूब गरज रहे थे, बिजलियां कौंध रही थीं। एक भयावह बिजली गिरी राजा के सिर पर। विद्युत्पात हुआ और राजा मर गया।

राजा मूर्च्छा में मरा, आसक्ति में मरा। आसक्ति छूटी नहीं, लोभ छूटा नहीं, अहंकार टूटा नहीं। बुरे भावों में राजा मरा और मरकर ठीक वहीं कीड़े के रूप में पैदा हुआ।

उसका पुत्र प्रियंकर निरंतर ध्यान रख रहा था। उसने सोचा–मुनि की सारी बातें तो मिल गईं। अब यह कीड़ा बनने वाली बात मिलती है या नहीं? जैसे ही राजा मरा। युवराज प्रियंकर उसी अकूरड़ी पर आया, उसने देखा–कीड़ा पैदा हो गया है। कीट को पैदा होने में देर कितनी लगती है। समूर्च्छिंत जीव तत्काल पैदा हो जाते हैं।

पिता ने पुत्र से पहले ही कह दिया था–'पुत्र! ध्यान देना। मुनिजी की सब बातें सही हो रही हैं। अगर यह भी सही मिल जाए तो मरने के बाद मैं कीड़ा हो जाऊं तो तुम तत्काल मार देना। उस बुरी गति में रहना ठीक नहीं है।'

राजा प्रियंकर ने सोचा–पिता का आदेश है। यह कीड़ा पैदा हो गया है। मैं कीड़े को मार डालूं। वह अकूरड़ी पर गया, कीड़े को मारने लगा। वह कीड़ा छटपटाया, एकदम भागने लगा। राजा प्रियंकर ने बहुत प्रयत्न किया किन्तु सफल नहीं हुआ। वह कीट इधर-उधर भाग जाता। राजा उसे मार नहीं सका।

राजा प्रियंकर वापिस राजमहल में आया। भोजन आदि से निवृत्त हुआ और सीधा मुनि कीर्तिधर के पास पहुंचा। वंदना की। मुनि ध्यानलीन थे। वहां श्रद्धाप्रणत हो उपासना में बैठ गया। जहां सत्यापन होता है, वहां श्रद्धा तो स्वयं हो जाती है। जो बात को प्रमाणीकृत कर देते हैं, सत्यापित कर देते हैं, वे श्रद्धेय बन जाते हैं। सत्यापन के साथ श्रद्धा पैदा होती है। प्रियंकर ने सोचा–कैसे ज्ञानी मुनि हैं? एक-एक बात सही घटित हो रही है। जो कहा, वह सब घटित हो गया। बड़ी श्रद्धा के साथ प्रियंकर बैठा रहा। मुनि ने ध्यान सम्पन्न किया।

प्रियंकर बोला–'महाराज! आपने जैसा कहा था, वैसा घटित हो गया। वहां अकूरड़ी पर एक कीड़ा उत्पन्न हो गया है। क्या मेरा पिता वही है।'

मुनि ने कहा–'बिल्कुल वही है तुम्हारा पिता।'

'महाराज! मेरे पिता ने मुझे कहा था कि मुझे मार डालना। मैं मारने गया पर मार नहीं सका। वह दौड़ जाता है, भाग जाता है, मरना नहीं चाहता। पहले तो कहा था कि अगर कीड़ा बनूं तो मार डालना। अब वह मरना नहीं चाहता।'

मुनि कीर्तिधर बोले–'प्रियंकर! तुम इस नियम को नहीं जानते–सव्वे जीवा वि इच्छंति, जीविउं न मरिज्जिउं।

यह एक प्राकृतिक नियम है, सिद्धांत है, जिनका महावीर ने प्रतिपादन किया–सब जीव जीना चाहते हैं, मरना कोई नहीं चाहता। चाहे कितनी भी बुरी अवस्था में है, व्यक्ति मरना नहीं चाहता।'

मरना सरल नहीं है। किसी भी अवस्था में हो, आदमी जीना चाहता है, मरना नहीं चाहता। अगर मरना कठिन नहीं होता तो अस्पतालों में इतनी भीड़ नहीं होती। बूढ़ा आदमी सत्तर-अस्सी को पार कर गया, बहुत बीमार रहता है फिर भी कहता है–अस्पताल में तो एक बार और भर्ती कर दो, एक बार और इंजेक्शन लग जाए, ग्लूकोज चढ़ जाए, कुछ कैप्सूल और टॉनिक ले लूं, फिर ताकत आ जाए। कोई भी व्यक्ति मरना नहीं चाहता। हर आदमी जीना चाहता है।

महावीर ने यह सिद्धांत बनाया था–जब तक शरीर समर्थ है, काम कर रहा है तब तक तो जीने का अर्थ है। जब देखो कि अब शरीर ढीला पड़ रहा है, काम नहीं दे रहा है तो फिर मरने की तैयारी कर लो। महावीर ने मरने की तैयारी का पाठ पढ़ाया था, मरने का डर दूर किया था, कहा था–मरने से डरो मत–'मा भैतव्वं। मरना कोई बुरी बात नहीं है किन्तु सामान्य आदमी में प्राणों का इतना मोह होता है, घर का, धन का, परिवार का इतना मोह होता है कि वह छोड़ना नहीं चाहता। वह यह समझता है कि मैं छोड़ दूंगा तो पीछे प्रलय हो जाएगा। अरे! कुछ भी नहीं होता। दुनिया ऐसे ही चलेगी पर मोह इतना सघन होता है कि मरना नहीं चाहता। कीर्तिधर मुनि ने कहा–'प्रियंकर! तुम इस नियम को समझो।'

अमेध्ये मध्य कीअस्य, सुरेन्द्रस्य सुरालये।
तुल्या जीविताकांक्षा, तुल्यं मृत्योर्भयम् द्वयोः।।

एक अकूरड़ी में जन्मा हुआ कीड़ा है और एक स्वर्ग में इन्द्र है। इन दोनों में जीने की आकांक्षा समान है और मृत्यु का भय भी समान है। सुरेन्द्र भी मौत से डरता है और यह कीड़ा भी मौत से डरता है।

प्रियंकर के यह बात समझ में आ गई, वह बोला—'महाराज! एक प्रश्न मेरा और है। वह यह है कि मेरा पिता इतना बड़ा आदमी था। वह मरकर कीड़ा बन गया। इसका हेतु क्या है? मैं अब कीड़ा नहीं बनना चाहता। मैं मरने के बाद ऐसी गति में जाना नहीं चाहता। मरने के बाद आदमी कीड़ा क्यों बनता है? नीची गति में क्यों जाता है? यह मैं जानना चाहता हूं।'

मुनि कीर्तिधर ने कहा—'प्रियंकर! इसका एक ही कारण है और वह है—जल्लेसे मरइ तल्लेसे उववज्जइ।'

अगर यह सूत्र याद रहे तो आदमी बहुत बुराइयों से बच जाए। प्रज्ञापना सूत्र का यह एक सूक्त है—आदमी जिस लेश्या में मरता है, उसी लेश्या में पैदा होता है। इसी का संवादी वाक्य अथवा अनुवाद है—अंत मति, सो गति—अंतिम समय में जो मति रहती है वैसी गति हो जाती है। इसलिए हर आदमी को सोचना है कि अंतिम समय कितना अच्छा रहे। जिस व्यक्ति का अंतिम समय समाधि में बीतता है, जो चौबीसी, आराधना की गीतिकाएं सुनते-सुनते मरता है, वह अच्छी गति में जाता है। जो अंतिम समय में मोह, मूर्च्छा में रहता है, वह निम्न गति में जाता है। मरते समय मोह परिवार में रह जाता है, इसलिए गति नीची हो जाती है। ऊपर नहीं जा सकते।

बड़ा महत्त्वपूर्ण प्रश्न है कि आदमी किस लेश्या में मरता है? किस भाव में मरता है? अगली गति का निर्धारण बहुत कुछ इस पर निर्भर रहता है। यही प्रश्न राजा प्रियंकर ने मुनि कीर्तिधर से पूछा। मुनि ने इस प्रश्न का जो उत्तर दिया, उसमें भावधारा और लेश्या की विशुद्धि का महान् संदेश निहित है।

प्रस्तुति—मुनि धनंजयकुमार

प्रेममय व्यक्तित्व

बोधकथा

सेंट पोप पॉल से किसी ने पूछा, 'मास्टर, दुनिया की सबसे महान् वस्तु क्या है? उन्होंने कहा, 'प्रेम!' किसी फकीर ने भी अपने अंदाज में कहा, 'इश्क अल्लाह का वजूद है, इश्क अल्लाह का रंग।'

प्रेमी व विनयशील व्यक्ति बड़े से बड़ा करिश्मा कर सकता है।

सहज स्वभाव वाला, प्रेममय व्यक्तित्व का एक युवक नदी किनारे जब भी जाता, पक्षी उसके कंधों पर आकर बैठ जाते थे। लोग देखते तो उन्हें बड़ा आश्चर्य लगता। धीरे-धीरे यह बात चारों तरफ फैल गई। देश-विदेश के लोग दूर-दूर से यह देखने आने लगे कि पक्षी किस तरह उस युवक के कंधे पर विश्राम करते हैं। यह बात उसके पिता को भी पता चली।

पिता ने अपने बेटे को बुलाया और पूछा, 'तुम्हारे बारे में सुना है कि पक्षी तुम्हारे कंधों पर विश्राम करते हैं? यह आश्चर्य कैसे घटित होता है? मैं भी यह दृश्य देखना चाहता हूं, पर मैं लाचार हूं, नदी किनारे जा ही नहीं सकता। क्या तुम आज कुछ पक्षी पकड़कर घर ला सकते हो, जिससे मुझे इस बात पर विश्वास हो सके?'

पिता की आज्ञानुसार वह युवक पक्षियों को पकड़ने का संकल्प लेकर नदी की ओर चला।

नदी किनारे जाते ही एक पक्षी उसके कंधे पर आकर बैठा। उसने उसे पकड़कर अपनी झोली में डालने का प्रयास किया। उस पक्षी ने अपने पंख झटके और युवक के हाथ से छूटकर उड़ता बना। उसकी चीख अन्य पक्षियों ने भी सुनी और वे भी उस युवक से दूर हट झुंड में जा बैठे। वह युवक आज अकेला था। उसकी आंखों में उन आजाद पक्षियों को पकड़ लेने का संकल्प और वासना थी। पक्षियों ने उसकी वासना को समझ लिया था, इसलिए आज वे उसके पास नहीं आए।

पर आश्चर्य तो यह था कि आसपास के लोग यह समझने में असमर्थ थे कि आज वे पक्षी उस युवक के कंधों पर विश्राम क्यों नहीं कर रहे?

मंगल भावना : एक टॉनिक

मुनि मदन कुमार

अनुत्तर योगी आचार्य महाप्रज्ञ ने साधना के अनेक प्रयोग किये। उस प्रयोगधर्मा का संपूर्ण जीवन साधना का उत्कृष्ट निदर्शन है। ऐसे ध्येयनिष्ठ व्यक्ति की हर क्रिया साधना बन जाती है। साधना, आनन्द का अजस्र स्रोत है। राग-द्वेष को शांत रखने वाला ही आनन्द को प्राप्त करता है। जीवन के संयम से ओतःप्रोत रहने पर ही आनन्द की अनुभूति होती है। आचार्य महाप्रज्ञ के शब्दों में ज्ञान, दर्शन और चारित्र के योग से ही पवित्रता आती है। उनके द्वारा आविष्कृत प्रेक्षाध्यान पद्धति राग-द्वेष के शमन का श्रेष्ठ मार्ग है। ज्ञान से एकाग्रता बढ़ती है और ध्यान से निर्मलता आती है, अतः दोनों का समन्वय जरूरी है। ज्ञानयुक्त आचार से ही जीवन में परिवर्तन घटित होता है और जीवन में रसवत्ता आती है। चारित्र श्रेष्ठतम तत्त्व है और वह मुक्ति का आधार है।

ज्ञान से एकाग्रता बढ़ती है और ध्यान से निर्मलता आती है, अतः दोनों का समन्वय जरूरी है। ज्ञानयुक्त आचार से ही जीवन में परिवर्तन घटित होता है और जीवन में रसवत्ता आती है। चारित्र श्रेष्ठतम तत्त्व है और वह मुक्ति का आधार है। श्री-ह्री-धी का एक त्रिक है। यह जीवन को सुन्दर और शुचितापूर्ण बनाने वाला है। मध्य में आत्मानुशासन की प्रतिष्ठा है जो श्री व धी का नियमन करता है। जैसे देव और धर्म का बोध देने वाले गुरु होते हैं वैसे ही श्री और धी का परिमार्जन करने वाला आत्मानुशासन होता है। जो धृतिमान होता है, वह आवेशपूर्ण परिस्थिति को बदलने और बाधाओं को निरस्त करने का सामर्थ्य प्राप्त कर लेता है। धृति, शक्ति और शांति- यह एक त्रिक है। शक्तिमान व्यक्ति ही धृतिमान और शान्तिमान हो सकता है। नंदी, तेज और शुक्ल का एक त्रिक है। जिसमें तेजस्विता होती है, वही आनन्द और निर्मलता का अधिकारी बनता है।

प्राणी को कर्मानुसार फल और गति मिलती है, यह सामान्य नियम सर्वत्र प्रचलित है। किन्तु पुरुषार्थ के द्वारा कर्म में परिवर्तन कर सकते हैं-यह भगवान महावीर की अनुत्तर देन है। पुरुषार्थ द्वारा भाग्य का निर्माण किया जा सकता है-यह एक अभिनव चिन्तन है। पहले लक्ष्य बनाये और फिर सही दिशा में गति की जाये तो जीवन धर्ममय और सुखमय बन सकता है। प्रेक्षाध्यान में जो नौ मंगल भावनाओं का प्रयोग आन्तरिक सौन्दर्य पाने का अमोघ साधन है।

1. श्री संपन्नोऽहं स्याम्-मैं आभा संपन्न बनूं। मेरा आभामंडल सदा पवित्र रहे। बाह्य और आभ्यन्तर सौन्दर्य बना रहे।

2. ह्री संपन्नोऽहं स्याम्-मैं लज्जा-आत्मानुशासन संपन्न बनूं। लज्जा अन्य सब गुणों को पैदा करने वाली तथा सर्वतोभावेन रक्षक है। मन चाहा करने वाला निर्लज्ज होता है। मन में लज्जा का भाव रखने पर व्यक्ति अनुचित कार्य नहीं करता है। लोग क्या कहेंगे? यह विचार भी पापाचार से विरत करने वाला है। 'हर डर, गुरु डर और गांव डर' रचनात्मक भय है। ये व्यक्ति को उबारने वाले हैं। आज समाज में भय कम हुआ है इसलिये उच्छृंखलता और विकृति बढ़ रही है। निर्विकार चित्त के लिये बुरे निमित्तों से बचना जरूरी है।

3. धी संपन्नोऽहं स्याम्-मैं बुद्धि संपन्न बनूं। शुद्ध बुद्धि, कामधेनु और कल्पवृक्ष के समान होती है। आत्मानुशासन होने पर विकृति पैदा नहीं होती है। आत्मानुशासन न होने पर लक्ष्मी और बुद्धि विकृति पैदा करती है। वही बुद्धि श्रेष्ठ है जो मनुष्य को धर्म के पथ पर ले जाये। बुद्धि की शुद्धि पर बल देते हुये आचार्य भिक्षु ने कहा है-

बुद्धि वा ही सराहिये जो सेवे जिनधर्म।
वा बुद्धि किण काम री जो पड़िया बांधे कर्म।।

श्री-ह्री-धी का एक त्रिक है। यह जीवन को सुन्दर और शुचितापूर्ण बनाने वाला है। मध्य में आत्मानुशासन की प्रतिष्ठा है जो श्री व धी का नियमन करता है। जैसे देव और धर्म का बोध देने वाले गुरु होते हैं वैसे ही श्री और धी का परिमार्जन करने वाला आत्मानुशासन होता है।

4. धृति संपन्नोऽहं स्याम्-मैं धृति संपन्न बनूं। श्रामण्य की सुरक्षा धृति से होती है। यह साधना का महामंत्र है।

अधीर व्यक्ति श्रामण्य का पालन नहीं कर सकता और वह मूल्यवान भी नहीं बन सकता। कहा है—

काच कथीर अधीर नर, कस्यां न उपजै प्रेम।
कसणी तो धीरा सहे, का हीरा के हेम।।

मन अच्छा रहे, नित्य नूतनता बनी रहे—इसके लिये धृति का विकास जरूरी है। जो धृतिमान होता है, वह आवेशपूर्ण परिस्थिति को बदलने और बाधाओं को निरस्त करने का सामर्थ्य प्राप्त कर लेता है।

5. शक्ति संपन्नोऽहं स्याम्—मैं शक्ति संपन्न बनूं। हर व्यक्ति में शक्ति होती है, उसका गोपन नहीं करना चाहिए, 'मैं यह नहीं कर सकता'—ऐसा जैन दर्शन को मान्य नहीं है। अकडं करिस्सामि—यह संकल्प सूत्र है। इसके सहारे कठिनतर कार्य संपादित किये जा सकते हैं।

6. शांति संपन्नोऽहं स्याम्—मैं शांति संपन्न बनूं। आवेश शांत रहे यह जरूरी है। शांति भीतर से आती है और वह कषाय शमन से ही प्राप्त होती है। शांति कहीं बाजार में नहीं मिलती है। डॉक्टर भी शामक औषधि दे सकते हैं पर शांति नहीं दे सकते। वस्तुतः शांति के लिये संयम जरूरी है और उससे ही सुखानुभव किया जा सकता है। धृति, शक्ति और शांति—यह एक त्रिक है। शक्तिमान व्यक्ति ही धृतिमान और शान्तिमान हो सकता है।

7. नंदी संपन्नोऽहं स्याम्—मैं आनन्द संपन्न बनूं। स्वयं को समृद्ध एवं ऐश्वर्य संपन्न अनुभव करना चाहिये। व्यक्ति दीनता का अनुभव न करे। हमारी आत्मा अनन्त चतुष्टयी से संपन्न है फिर हीनता और दीनता की अनुभूति क्यों हो?

8. तेजः संपन्नोऽहं स्याम्—मैं तेजस्वी बनूं। तेजस्विता से ही मूल्यवत्ता बढ़ती है। बुझी अग्नि का विशेष मूल्य नहीं होता। धुआं बनकर जीना सार्थक नहीं होता। तेजस्विता के महत्त्व को स्वीकार करते हुये कहा है, 'मुहूर्तं ज्वलितं श्रेयो न तु धूमायितं चिरम्'— तेजस्वी बनकर मुहूर्त भर जीना श्रेयस्कर है। धुआं बनकर चिरकाल तक जीना व्यर्थ है। आचार्य महाप्रज्ञ के शब्दों में—मूर्च्छित होकर चिरकाल तक जीना व्यर्थ है। साधना से ही तेजस्विता आती है। योग अशुभ न बने। भाव शुद्धि और शुभ योग से तेजस्विता आ जाती है। नकारात्मक भाव तेज को कम कर देते हैं। शुभ योग की साधना निरन्तर चल सकती है और जीवन को उल्लासमय बना सकती है।

9. शुक्लः संपन्नोऽहं स्याम्—मैं शुक्ल लेश्यी बनूं। इससे व्यक्ति अन्तर्आत्मा और महात्मा बन जाता है। वीतराग शुक्ललेश्यी होते हैं। शुक्ललेश्यी बनने वाला वीतरागकल्प हो जाता है। इससे आन्तरिक और बाह्य दोनों निर्मलता बढ़ती है।

नंदी, तेज और शुक्ल का एक त्रिक है। जिसमें तेजस्विता होती है, वही आनन्द और निर्मलता का अधिकारी बनता है। प्रेक्षा प्रणेता आचार्य महाप्रज्ञ के जीवन में इन तीन त्रिक अर्थात् नौ भावनाओं का सुन्दर समावेश है। उनका व्यक्तित्व और कर्तृत्व यशस्वी है। देह में भी विदेही बन जीने वाले ऐसे पुरुषों का यशःकाय सदा बना रहता है।

पृष्ठ 6 का शेषांश

आसक्ति द्वैत में पैदा होती है। अद्वैत की भावना पुष्ट होने पर वह विलीन हो जाती है। उपनिषद् का स्वर है—वहां क्या मोह और क्या शोक होगा जो एकत्व को देखता है—

तत्र को मोहः कः शोकः एकत्वमनुपश्यतः।

एकत्व की भावना का दृढ़ अभ्यास करने पर शरीर, उपकरण आदि पर होने वाली आसक्ति क्षीण हो जाती है। संयोग हमारी व्यावहारिक सच्चाई है। हम उसका अतिक्रमण नहीं कर सकते किन्तु इस वास्तविकता को भी नहीं भुला सकते कि अन्ततः आत्मा उन सबसे भिन्न है। इस भेदज्ञान की अनुभूति को पुष्ट कर साधक देह में रहते हुए भी देह के बन्धन से मुक्त हो जाता है।

बल की भावना से साधना की यात्रा में आने वाले कष्टों को सहन करने की शक्ति प्राप्त हो जाती है। इन पांच भावनाओं के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुंच सकते हैं है, ज्ञानी है,

आसक्ति द्वैत में पैदा होती है। अद्वैत की भावना पुष्ट होने पर वह विलीन हो जाती है। उपनिषद् का स्वर है—वहां क्या मोह और क्या शोक होगा जो एकत्व को देखता है—

तत्र को मोहः कः शोकः एकत्वमनुपश्यतः।

एकत्व की भावना का दृढ़ अभ्यास करने पर शरीर, उपकरण आदि पर होने वाली आसक्ति क्षीण हो जाती है। संयोग हमारी व्यावहारिक सच्चाई है। हम उसका अतिक्रमण नहीं कर सकते किन्तु इस वास्तविकता को भी नहीं भुला सकते कि अन्ततः आत्मा उन सबसे भिन्न है। इस भेदज्ञान की अनुभूति को पुष्ट कर साधक देह में रहते हुए भी देह के बन्धन से मुक्त हो जाता है।

बल की भावना से साधना की यात्रा में आने वाले कष्टों को सहन करने की शक्ति प्राप्त हो जाती है। इन पांच भावनाओं

व्यक्तित्व निर्माण में विधायक भावों की भूमिका

साध्वी सिद्धप्रज्ञा

करुणार्द्रचेता आचार्य शय्यंभव ने दशवैकालिक सूत्र में एक महत्वपूर्ण शब्द की सृष्टि की–'होउकाम', भवितुकाम। भवितुकामिता व्यक्तित्व निर्माण की उत्कृष्ट इकाई है। मैं कुछ होना चाहता हूं–इस चाह की सफलता का स्वर्ण सूत्र है–भावना। भाव्य वस्तु के प्रति एकाग्र और तन्मय होना भावना है। वासना, धारणा और जप ये सब भावना के पर्याय हैं। इनमें शाब्दिक भेद होने पर भी आर्थिक अभेद है।

पुरानी असत् वासनाओं को अभिभूत करने के लिये नई सत् वासनाओं की सृष्टि अनिवार्य है। जैसी भावना या वासना की जाती है, वैसा ही व्यक्तित्व निर्मित हो जाता है। जिसकी भावना की जाती है उसी का संस्कार निर्मित हो जाता है।

अब्राहम लिंकन की जन्मशती मनाई जा रही थी। वर्षभर उसकी भूमिका निभाने वाला व्यक्ति खुद को लिंकन मानने लगा। वह समझाने पर भी नहीं समझा। यथार्थता की अभिव्यक्ति देने वाली मशीन ने भी उसे लिंकन ही सिद्ध किया। एक मान्यता यह भी रही है कि हजार बार दुहराने से झूठ भी सच बन जाता है। तब फिर सच को सच बनने में कहीं कोई बाधा ही क्या है? प्रज्ञापुरुष जयाचार्य ने 'चौबीसी' में लिखा है–

> *करुणार्द्रचेता आचार्य शय्यंभव ने दशवैकालिक सूत्र में एक महत्त्वपूर्ण शब्द की सृष्टि की–'होउकाम', भवितुकाम। भवितुकामिता व्यक्तित्व निर्माण की उत्कृष्ट इकाई है। मैं कुछ होना चाहता हूं–इस चाह की सफलता का स्वर्ण सूत्र है–भावना। भाव्य वस्तु के प्रति एकाग्र और तन्मय होना भावना है। वासना, धारणा और जप ये सब भावना के पर्याय हैं। इनमें शाब्दिक भेद होने पर भी आर्थिक अभेद है। मानव शरीर में अरबों-खरबों कोशिकाएं हैं। प्रत्येक कोशिका में ज्ञानकेन्द्र होते हैं। भावना के द्वारा उनका जागरण और नवीनीकरण किया जा सकता है। मस्तिष्कीय ज्ञानतंतुओं को जैसी सूचना दी जाती है, वे तदनुरूप आचरण प्रारंभ कर देते हैं। शरीर को शिथिल कर संकल्पपूर्वक तन्मयता से मंगल वाक्यों की बार-बार आवृत्ति करने पर निश्चित ही वह भावना अवचेतन मन तक पहुंच जाती है और रूपान्तरण घटित होने लगता है। जो भावितात्मा होता है, वह अपनी भावना के अनुसार हर कार्य में सफल होता है। ज्ञानतंतु उसके वशवर्ती हो जाते हैं।*

'प्रभु! तुम तुल्य ते हुवै ध्यान सूं, मन पायां परम संतोष हो।' (8/3)

'विमल ध्यान बलि जे कोई ध्यासी, होसी विमल सरीस।' (13/2)

वीतराग प्रभु का ध्यान करने वाला वीतराग बन जाता है। सोऽहं का जप करने वाला हंस–भेदविज्ञानी–परमात्मा' बन जाता है। अर्हं की भावना करने वाले में अर्हम् बनने की प्रक्रिया शुरू हो जाती है। अपने मानस पर बाहुबलि का चित्र निर्माण कर उसका साक्षात् करने वाला शक्ति सम्पन्न बन जाता है। यह गुणसंक्रमण का सिद्धांत है।

भ्रमरी का ध्यान करने वाली इलिका भी भ्रमरी बन जाती है तो सराग वीतराग क्यों नहीं बन सकता? बशर्तेकि उसकी भावना में एकाग्रता, एकरसता और तन्मयता हो। भगवान महावीर ने भावना को नौका कहा है। भावना योग से व्यक्ति समस्याओं के सागर को तर जाता है। यह ब्रेन वाशिंग की पद्धति है। इससे मस्तिष्क की धुलाई होने पर पुराने संस्कार क्षीण हो जाते हैं, नये संस्कार निर्मित होते हैं।

मानव शरीर में अरबों–खरबों कोशिकाएं हैं। प्रत्येक कोशिका में ज्ञानकेन्द्र होते हैं। भावना के द्वारा उनका जागरण

और नवीनीकरण किया जा सकता है। मस्तिष्कीय ज्ञानतंतुओं को जैसी सूचना दी जाती है, वे तदनुरूप आचरण प्रारंभ कर देते हैं। शरीर को शिथिल कर संकल्पपूर्वक तन्मयता से मंगल वाक्यों की बार-बार आवृत्ति करने पर निश्चित ही वह भावना अवचेतन मन तक पहुंच जाती है और रूपान्तरण घटित होने लगता है। जो भावितात्मा होता है, वह अपनी भावना के अनुसार हर कार्य में सफल होता है। ज्ञानतंतु उसके वशवर्ती हो जाते हैं।

आज चिकित्सा के क्षेत्र में "ऑटोसजेशन" (स्वतः-सूचन) की स्वतंत्र चिकित्सा-विधि विकसित हो रही है। 'मैं स्वस्थ हो रहा हूं—बार-बार इस सुझाव का प्रयोग करने से व्यक्ति रोगमुक्त हो जाता है।'

हिमपात हो रहा है। सब लोग ठिठुर रहे हैं। एक व्यक्ति गर्मी की भावना का प्रयोग प्रारंभ करता है और कुछ ही क्षणों बाद उसके शरीर से पसीना निकलने लगता है। यह परिवर्तन ध्वनि और भावना के प्रयोग से ही संभव है।

आकाश में सर्वत्र ध्वनि प्रकंपन व्याप्त है। लम्बी अथवा छोटी तरंगों और आवृत्तियों को अमुक स्थिति में ही पकड़ा जा सकता है। भावना की जितनी अधिक आवृत्तियां तरंग-दैर्घ्य के साथ की जाती है, उतनी ही शीघ्र भावना फलवती बनती है।

आचार्य महाप्रज्ञ ने प्रेक्षासाधकों को नौ मंगल भावनाओं का सुदृढ़ कवच दिया है, जिससे शक्ति-संरक्षण-संवर्धन की दिशा में अभिनव प्रस्थान हुआ है।

इनमें प्रथम दो भावनाएं बीजाक्षर रूप हैं। शेष सात मंगल भाव विधायक भाव हैं, जो निषेधात्मक भावों के कांटों को निकालकर व्यक्ति के लिए निष्कण्टक राजपथ का निर्माण करते हैं।

अर्थ तो लक्ष्मी है ही पर शाश्वत मूल्य वाली लक्ष्मी है—ज्ञान, दर्शन और चारित्र की संपदा। "मैं ह्री (लज्जा, संयम, आत्मानुशासन) से सम्पन्न बनूं"—इस मंगल भावना से भावित व्यक्ति अपना अधिपति होता है और वही सही माने में दूसरों का अनुशास्ता या अधिपति बनने का अधिकारी है। "मैं बुद्धि से सम्पन्न बनूं"—इस मंगलभावना से अनुप्राणित व्यक्ति अपनी जागृत बुद्धि के सहारे प्रज्ञाजागृति का राजपथ निर्मित कर लेता है। "मैं धृति से सम्पन्न बनूं"—इस मंगल भावना से अनुप्राणित व्यक्ति साधना के शिखर पर पहुंच सकता है। शक्ति सम्पन्नता की मंगल भावना व्यक्ति को बाहुबलि की ताकत का अहसास करा सकती है। "मैं शांतिसंम्पन्न बनूं"—इस मंगल भावना से भावित व्यक्ति दुनिया का सबसे बड़ा आदमी होता है। "मैं आनंद सम्पन्न बनूं"—इस भावना से भावित आत्मा को कभी भी अनुत्साह और निराशा के अंधेरे में भटकना नहीं पड़ता। "मैं तेजस्वी बनूं"—इस भावना से भावित व्यक्ति ज्योतिर्मय तेजपुंज बन सकता है। शुक्लता परम पवित्रता और वीतरागता का प्रतीक है।

1. **श्रीसम्पन्नोऽहं स्याम्**—'मैं श्री सम्पन्न बनूं'—इस मंगल भावना से भावित व्यक्तित्व अलौकिक आभा से चमक उठता है। वह अकल्पित सम्पदाओं का मालिक बन सकता है। लौकिक और लोकोत्तर—हर क्षेत्र में श्री का अपना मूल्य है। इस मूल्य का अवमूल्यन जीवन को रसहीन बना देता है।

एक सम्राट से रूठकर जब लक्ष्मी राजमहल के खजाने से विदा हो गई तो यश और सत्य ने भी वहां रहने से इंकार कर दिया। पर सम्राट की अनुमति के बिना सत्य जा नहीं सका तो लक्ष्मी और यश लौट आये।

अर्थ तो लक्ष्मी है ही पर शाश्वत मूल्य वाली लक्ष्मी है—ज्ञान, दर्शन और चारित्र की संपदा।

इनसे समृद्ध व्यक्तित्व हर व्यक्ति के हृदय पर शासन करता है, ऊंचे सिंहासन पर आसीन होता है। भारतीय संस्कृति में पूज्यजनों-गुरुजनों को 108 अथवा 1008 श्री से विभूषित किया जाता रहा है।

2. **ह्री सम्पन्नोऽहं स्याम्**—"मैं ह्री (लज्जा, संयम, आत्मानुशासन) से सम्पन्न बनूं—इस मंगल भावना से भावित व्यक्ति अपना अधिपति होता है और वही सही माने में दूसरों का अनुशास्ता या अधिपति बनने का अधिकारी है। आंख में शर्म न हो, इन्द्रियों का संयम न हो, वृत्तियों पर नियंत्रण न हो, वह व्यक्ति दूसरों का तो क्या, अपना भी भला नहीं कर सकता। ह्री से सम्पन्न व्यक्ति

विकास की ऊंचाई को छू सकता है।

'पानबीह में केहरि, पंथ बीच में श्वान।

इज्जत को भय होत है, निर्लज निर्भय जान।।'

3. **धी सम्पन्नोऽहं स्याम्**—"मैं बुद्धि से सम्पन्न बनूं"—इस मंगलभावना से अनुप्राणित व्यक्ति अपनी जागृत बुद्धि के सहारे प्रज्ञाजागृति का राजपथ निर्मित कर लेता है। बुद्धू व्यक्ति किसी काम का नहीं होता। बुद्धिवैभव से सम्पन्न व्यक्ति अपनी सृजन चेतना को जगाकर विश्व स्तर पर क्रांति का सिंहनाद कर सकता है। देश का कायाकल्प कर सकता है। जटिल से जटिल समस्या को कुछ ही क्षणों में सुलझा सकता है।

4. **धृति सम्पन्नोऽहं स्याम्**—"मैं धृति से सम्पन्न बनूं"—इस मंगल भावना से अनुप्राणित व्यक्ति साधना के शिखर पर पहुंच सकता है। धृति के बिना साधुता टिक ही नहीं सकती। जो धीर नहीं है, वह वीर और गंभीर भी नहीं हो सकता। पग-पग पर अधीर होने वाला व्यक्ति विकास का एक पग भी नहीं भर सकता। जो मन का मालिक होता है, वही प्रगति के लिये अधिकृत होता है। धृति मन का नियमन करने वाली गुणवता है। हेम और हीरे की तरह धृति सम्पन्न व्यक्ति ही हर कसौटी पर खरा उतरता है। प्रतिकूलता की हवा उसे विचलित नहीं कर पाती।

5. **शक्ति सम्पन्नोऽहं स्याम्**—शक्ति सम्पन्नता की मंगल भावना व्यक्ति को बाहुबलि की ताकत का अहसास करा सकती है। इस दुनिया में शक्तिशाली व्यक्ति ही पूजा जाता है। दुर्बलता एक शारीरिक अभिशाप है व मानसिक दौर्बल्य व्यक्ति में हीन भावना पैदा करता है। उसकी सहन करने की क्षमता भी क्षीण हो जाती है। 'जिसकी लाठी उसकी भैंस'—यह लोकोक्ति लोक जीवन में शक्ति का माहात्म्य उजागर कर रही है। शक्तिहीन का कोई साथी नहीं होता।

6. **शांति सम्पन्नोऽहं स्याम्**—"मैं शांतिसंम्पन्न बनूं"—इस मंगल भावना से भावित व्यक्ति दुनिया का सबसे बड़ा आदमी होता है। उसके सामने तीन लोक की सम्पदा फीकी पड़ जाती है। पूर्वाचार्यों ने उसे महान् शास्त्रज्ञ कहा है, जिसका मन सदा शांत रहता है। अर्हतों का आधार भी शांति है। शांत चित्त में बुद्धि स्फुरित होती है। शांत व्यक्ति के सुख की स्पर्धा इंद्र भी नहीं कर सकते। शांत व्यक्ति परिवार और समाज का आभूषण होता है, राष्ट्र की धरोहर होता है। सम्यक्त्व की प्रथम पहचान है शम-शांति। जिसने शांति को साध लिया उसने वीतरागता की दिशा में प्रस्थान कर दिया।

7. **नन्दी सम्पन्नोऽहं स्याम्**—"मैं आनंद सम्पन्न बनूं"—इस भावना से भावित आत्मा को कभी भी अनुत्साह और निराशा के अंधेरे में भटकना नहीं पड़ता। वह हानि को लाभ में बदलना जानता है। वह खटास को मिठास में बदलना जानता है। यह बदलने की क्षमता आश्चर्यजनक विशिष्टता है। इस क्षमता वाला व्यक्ति परिस्थिति से समझौता करना जानता है। आंखों के अभाव में भी मिल्टन ने एक काव्य लिख डाला। बहरेपन में भी बियोना संगीतकला में पारंगत हो गया। 'णो हीणे णो अइरित्ते' इस वीर वाणी का आराधक व्यक्ति दुःखों के सागर को तर जाता है।

8. **तेजः सम्पन्नोऽहं स्याम्**—"मैं तेजस्वी बनूं"—इस भावना से भावित व्यक्ति ज्योतिर्मय तेजपुंज बन सकता है। तेजस्विता महानता की जननी है। जिसकी भावधारा, प्राणधारा निर्मल होती है, वह तेजस्वी होता है। जब तक तेजोलेश्या के स्पंदन नहीं जागते तब तक व्यक्ति में धर्म का अवतरण नहीं होता। तेजोलेश्या का उदय होने पर अल्फा तरंगों में कल्पनातीत वृद्धि होती है और व्यक्ति आनन्द से भर जाता है। फिर बुरे विचार उस पर आक्रमण नहीं कर सकते। अध्यात्म यात्रा की प्रथम भूमिका है—तैजस सम्पन्नता।

9. **शुक्ल सम्पन्नोऽहं स्याम्**—शुक्लता परम पवित्रता और वीतरागता का प्रतीक है। शुक्लसम्पन्न व्यक्ति आवेग, आवेश, तनाव, वासना, क्रोध आदि की गुलामी से सर्वथा मुक्त हो, परम शांति का अनुभव करता है।

प्रयोग विधि— जो व्यक्ति स्थिर आसन में बैठकर शरीर को शिथिल कर, जब तच्चित्ते, तम्मणे, तल्लेसे होकर इन भावनाओं का मधुर स्वर में प्रलम्ब उच्चारण करता है तो उसके चारों ओर शुभ और पवित्र प्रकंपनों का कवच बन जाता है।

1. श्री—श्री का उच्चारण अपने शरीरस्थ उच्चारण स्थानों को प्रभावित करता है। इसमें तालु और मूर्धा प्रमुख रूप से प्रभावित होते हैं। ज्ञानकेन्द्र (सहस्रार चक्र) पर चित्त को केन्द्रित कर श्वेत वर्ण के साथ इस भावना का उच्चारण किया जाये तो अविलम्ब श्रीसम्पन्नता उपलब्ध हो सकती है।
2. ह्री—इसका उच्चारण करने पर कण्ठ, तालु और मूर्धा—ये तीनों स्थान प्रभावित होते हैं। विशुद्धि केन्द्र पर चित्त को केन्द्रित कर नीले वर्ण के साथ इस भावना का प्रयोग करने से ह्रीसम्पन्नता का संकल्प शीघ्र फलीभूत होता है।

3. धी–शांतिकेन्द्र पर चित्त को एकाग्र कर पीत वर्ण के साथ इस भावना का प्रयोग बुद्धि में नवोन्मेष लाता है। इसका बीजमंत्र है–ऐं।
4. धृति–प्राणकेन्द्र (नासाग्र) पर चित्त को केन्द्रित कर पीत वर्ण के साथ इस भावना का प्रयोग करने से धृति का विकास होता है।
5. शक्ति–कायोत्सर्ग की मुद्रा में चित्त को तैजस केन्द्र पर केन्द्रित कर अरुण वर्ण के साथ इस भावना का प्रयोग सफलता का प्रमाणपत्र है।
6. शांति–ज्योतिकेन्द्र पर चित्त को स्थिर कर श्वेत या नीले रंग के साथ इस भावना का प्रयोग करने वाला शांतिसम्राट बन सकता है।
7. नन्दी–आनन्दकेन्द्र पर चित्त को केन्द्रित कर गुलाबी रंग के साथ इस भावना का प्रयोग करने से आनन्द बढ़ता है।
8. तेजस्–दर्शन केन्द्र पर चित्त को केन्द्रित कर अरुण वर्ण के साथ इस भावना का प्रयोग करने से तेजस्विता बढ़ती है।
9. शुक्ल–सिर के पूरे भाग में चित्त को केन्द्रित कर श्वेत वर्ण के साथ इस मंगल भावना का अभ्यास करने वाला साधक वीतरागता की दिशा में प्रस्थित हो सकता है।

इस मंगल भावनानवक में अक्षरों की संयोजना बेजोड़ है। प्रत्येक वाक्य में 'म' का उच्चारण दो बार तो होता ही है। होठ से उच्चरित होने वाला 'म' उदान नामक प्राण का केन्द्र है। इसमें सिद्धियां देने वाली प्राणशक्ति निहित है। इस दृष्टि से इन नौ मंगल भावनाओं को चक्रवर्ती की नौ निधियों से उपमित किया जा सकता है।

इन वाक्यों के ह्रस्व–दीर्घ–प्लुत लयबद्ध उच्चारण से उत्पन्न ध्वनि तरंगें शरीर में प्रशस्त विद्युत् चुम्बकीय तरंगों को उत्पन्न करती हैं। इनसे अन्तःस्रावी ग्रंथियां, भावधारा, चिन्तन, आचरण सब प्रभावित होते हैं।

इन ध्वनि प्रकम्पनों के प्रभाव से ज्ञानकेन्द्र, दर्शनकेन्द्र, विशुद्धिकेन्द्र और आनन्दकेन्द्र विशेष रूप से प्रभावित होते हैं, सक्रिय होते हैं। प्राणशक्ति की सक्रियता, शक्तियों का जागरण, रासायनिक परिवर्तन, व्यक्तित्व का रूपांतरण, अभेद्य कवच का निर्माण और शांत निर्मल वातावरण–ये सब घटित हो सकते हैं इन भावनाओं के प्रयोग से। जिस उर्वर मस्तिष्क ने इन मंगल भावनाओं की सृष्टि की है, उस महामंगल के श्रीचरणों में भावभरी अभिवन्दना।

पृष्ठ 9 का शेषांश

और प्रस्थान कर रहे हैं। योग के ग्रंथों में बहुत सुंदर लिखा गया–'स्थूलात् सूक्ष्मं समालंबे' स्थूल से सूक्ष्म का आलंबन लो, सूक्ष्म में जाओ। वैज्ञानिक लोगों ने स्थूल से सूक्ष्म में जाने का प्रयत्न किया इसीलिए उनके द्वारा इतने आविष्कार और खोजें हो गई। एक समय था जब भारत के ऋषि-महर्षि और तपस्वी साधुओं की सूक्ष्म की खोज करते थे। उन्हें वैज्ञानिक नहीं, परम वैज्ञानिक कहा जा सकता है।

सूंठ की तासीर गर्म होती है, यह कैसे पता चला? लौंग गर्म होता है, यह कैसे पता लगा? धनिया ठंडा होता है, यह कैसे मालूम हुआ? इन सबका परीक्षण हुआ। उन ऋषियों की धारणा प्रणाली इतनी उत्कृष्ट थी कि वे पौधे से उनका गुण पूछ लेते थे और पौधे उन्हें बता भी देते थे। कोई आवाज नहीं, वाणी नहीं, मात्र कि धन्वंतरि, सुश्रुत और चरक आदि ऋषियों ने इसी तरह एक लाख वृक्षों और पौधों पर अनुसंधान किया था।

एक बात समझ लें कि ऊंचे काम तब होते हैं, जब आदमी का दिमाग कलह-कदाग्रह और लड़ाई-झगड़े से विरत होता है। आदमी ज्यादातर स्थूल जगत में रहता है और जीता है। स्थूल जगत में रहकर सत्य की प्राप्ति नहीं हो सकती। शुक्ल वर्ण, शुक्ल लेश्या और शुक्ल मंगलभावना प्रेक्षाध्यान के साथ करें और इस संकल्प के साथ करें कि हमें स्थूल से सूक्ष्म में प्रवेश करना है।

आज लोग अपनी प्राचीन विरासत को भूलते जा रहे हैं। वे मानते ही नहीं कि हमारे यहां अपनी सूक्ष्म दृष्टि के द्वारा, अपनी प्रतिभा के द्वारा और ध्यान के द्वारा इतनी विशिष्ट खोजें हुई थीं। आज स्थिति यह हो गई कि भारतीय लोगों ने ध्यान तो छोड़ दिया और जो लोग यहां से सीख कर गए हैं, उनके अनुयायी बन रहे हैं।

आदमी ज्यादातर स्थूल जगत् में रहता है और जीता है। स्थूल जगत् में रहकर सत्य की प्राप्ति नहीं हो सकती। शुक्ल वर्ण, शुक्ल लेश्या और शुक्ल मंगलभावना प्रेक्षाध्यान के साथ करें और इस संकल्प के साथ करें कि हमें स्थूल से सूक्ष्म में प्रवेश करना है।

आचार्य महाप्रज्ञ

एक शब्द : एक चित्र

अतिवृष्टि

प्रकृति
का नियम
आज भी
अव्याकृत है।
कभी
अनावृष्टि
और कभी
अतिवृष्टि।
कहीं
अनावृष्टि
और कहीं
अतिवृष्टि।
क्या प्रकृति के
शब्दकोश
में
संतुलन शब्द
नहीं है?

वंदन-अभिनंदन

धर्मचंद, रणजीत, वंश लूंकड़
राणावास - चेन्नई

आचार्य महाप्रज्ञ

एक शब्द : एक चित्र

अनुप्रेक्षा

आदमी
बदलना
चाहता है
पर
नहीं बदलता।
आदमी
करना
चाहता है
पर
नहीं करता।
इस अवरोध को
मिटाने का
सर्वोत्तम
उपाय है—
अनुप्रेक्षा।
शब्द के
अर्थ का चिंतन,
अभ्यास
और संकल्प।

वंदन-अभिनंदन
कमल कुमार अंकित गुप्ता, श्रीडूंगरगढ़
श्री महावीर टिम्बर स्टोर्स, आराम टिम्बर मार्केट, स्वर्ण पार्क-नांगलोई
दिल्ली-110041, फोन : (011-28342403)

आचार्य महाप्रज्ञ

एक शब्द : एक चित्र

अनुगामी

आगे चलना
कठिन है।
पीछे चलना
बहुत कठिन।
आगे
चलने वाला
पथ को
देखता है
और
पीछे चलने वाला
पदचिह्नों को।
कितना
कठिन है
पदचिह्नों का
अनुसरण!

वंदन-अभिनंदन
मनोज गुजरानी (सरदारशहर)

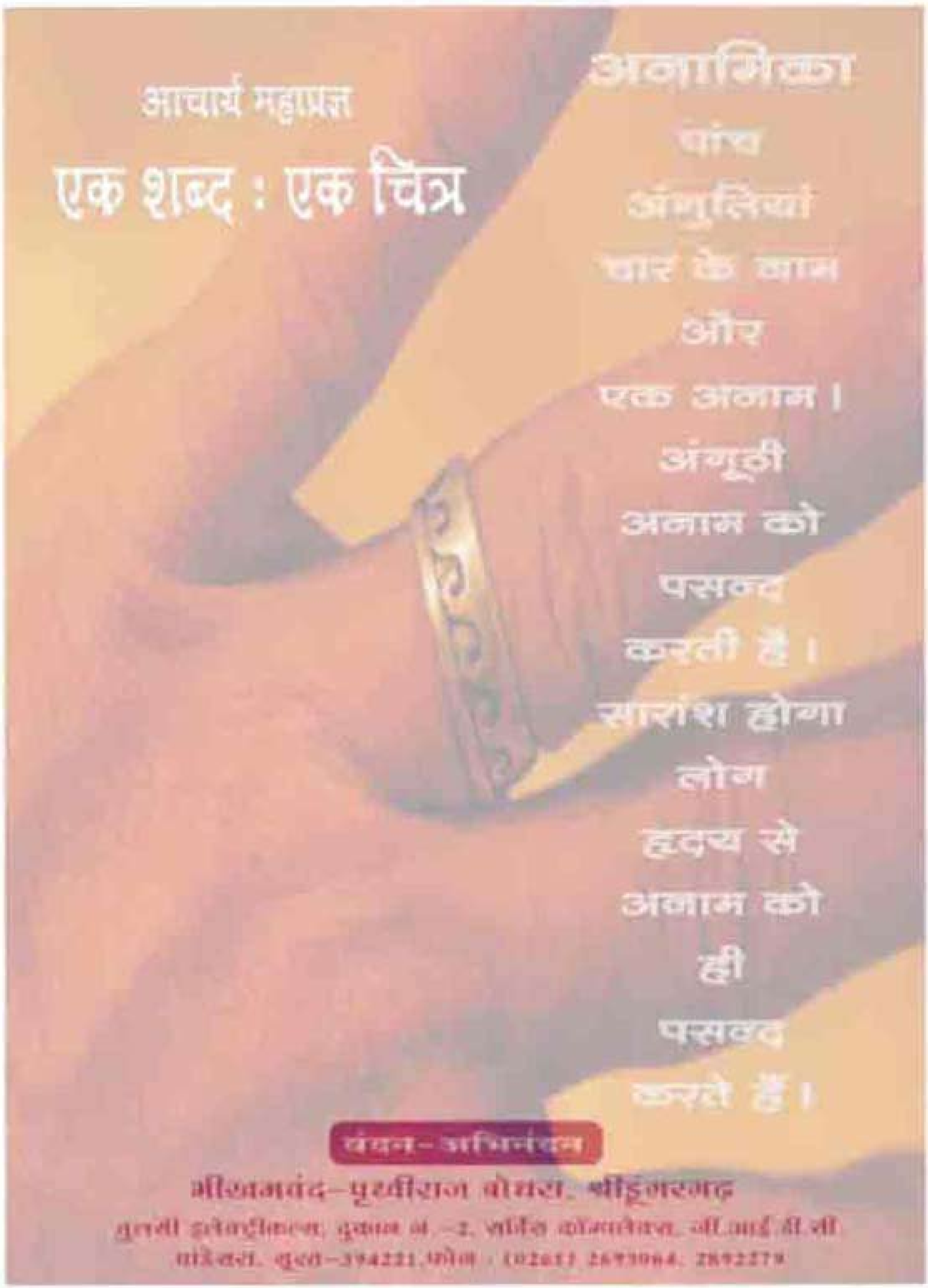
आचार्य महाप्रज्ञ
एक शब्द : एक चित्र
अनामिका
पांच
अंगुलियां
चार के नाम
और
एक अनाम ।
अंगूठी
अनाम को
पसन्द
करती है।
सारांश होगा
लोग
हृदय से
अनाम को
ही
पसन्द
करते हैं।
वंदन-अभिनंदन

क्षमा से मिलती है सिद्धि

साध्वी चन्द्रयशा

क्रोध शांति का नाशक और धर्म का क्षय करने वाला है। एक दिन का क्रोध वर्ष भर संचित बल का हरण कर लेता है, उसी प्रकार एक पल का क्रोध पूर्व अर्जित तप को समाप्त करने वाला सिद्ध होता है। क्रोध एक जहर है जिस पर जप या मौन के द्वारा विजय पा सकते हैं। मार्मिक घटना से इसे सिद्ध किया जा सकता है। एक बार एक बुढ़िया थी। उसको बहुत क्रोध आता था। उसके पास कोई भी रहना नहीं चाहता थे। वह छोटी-छोटी बात पर झगड़ा और क्रोध करती थी। एक लड़की उस बुढ़िया के पास आई और कहा-'मां! मैं आपकी सेवा करूंगी।' जब बुढ़िया क्रोध करती तो वह लड़की मन-मन में नमस्कार महामंत्र का जप करने लग जाती और बुढ़िया बोलती-बोलती थक जाती तो वह अपने आप चुप हो जाती। कई दिनों तक यह क्रम चला और फिर वह बुढ़िया अपने आप क्रोध को शांत करने का लक्ष्य बनाने लगी। क्रोध एक जहर है। जहर केवल मनुष्य में ही नहीं होता, बिच्छु और सांप में भी होता है। जब मनुष्य क्रोधाविष्ट होता है तब उसके शरीर में जहर व्याप्त हो जाता है। क्रोध एक प्रकार की भंयकर आग है, जो स्वयं को जलाती ही है, जिसके प्रति क्रोध किया जाता है उसको भी संताप से जलाती है। बुद्धि को भी क्रोध जलाती है और उसे नष्ट कर देती है। जो व्यवहार हम दूसरों से अपने लिए चाहते हैं, वैसा ही व्यवहार पहले स्वयं दूसरों के साथ करें।

क्रोध शांति का नाशक और धर्म का क्षय करने वाला है। एक दिन का क्रोध वर्ष भर संचित बल का हरण कर लेता है, उसी प्रकार एक पल का क्रोध पूर्व अर्जित तप को समाप्त करने वाला सिद्ध होता है। क्रोध एक जहर है जिस पर जप या मौन के द्वारा विजय पा सकते हैं।

जैसे हम दूसरों का क्रोध पसन्द नहीं करते वैसे ही हमारा क्रोध भी कोई पसन्द नहीं करता। क्रोध की किसी को आवश्यकता नहीं है। अतः किसी से क्रोध न करें। क्रोध की खुराक है-प्रेम। जैसे मारने वाले पशु से सब बचकर निकलना चाहते हैं वैसे ही क्रोधी व्यक्ति से सब बचते हैं। उससे कोई प्रेम नहीं करता, न वो किसी से प्रेम करता है।

क्रोध में बोले गए वचन और क्रोध में लिया गया निर्णय हमेशा गलत होता है। कुछ लोग यदि यह कहते हैं कि मुझे गलत बात पर गुस्सा आता है तो इसमें क्या खास बात है। सही बात पर तो किसी को नहीं आता और गुस्सा करना ही सबसे गलत बात है।

क्रोध का सबसे बड़ा उपचार है-जब क्रोध आए उस समय न बोलना, न लिखना, न जवाब देना। जो मनुष्य क्रोध नहीं करता वह महान् होता है।

जब क्रोध आए, उस समय या तो मौन कर लेना या उस जगह से उठ कर इधर-उधर चले जाना या कुछ देर के लिए श्वास रोक लेना या सौ तक गिनती करना, इन सबको क्रियान्वित करके अपने जीवन को क्रोध से मुक्त किया जा सकता है। क्रोधित व्यक्ति जब दूसरे पक्ष को क्षमा कर देता है तो उसे सिद्धि की प्राप्ति होती है।

जीवन निर्माण हेतु सर्वांगीण शिक्षा आवश्यक

सादुलपुर। मुनिश्री विजयराजजी ने अणुव्रत जीवन विज्ञान अभियान के तहत बी.एस. मेमोरियल उच्च माध्यमिक विद्यालय में विद्यार्थियों को संबोधित करते हुए कहा कि शिक्षा का मुख्य लक्ष्य अर्थोपार्जन न होकर व्यक्ति का जीवन निर्माण होना चाहिए। सर्वांगीण शिक्षा के द्वारा ही व्यक्ति स्वस्थ व सुखी जीवन जी सकता है। मुनिश्री ने स्वस्थ व सुखी जीवन के लिए विद्यार्थियों को प्रेक्षाध्यान के सूत्र बताए तथा कार्यक्रम में विद्यार्थियों को ध्यान, योग, आसन, प्राणायाम आदि के विविध प्रयोग करवाए। कार्यक्रम के संचालन में महावीर, प्राचार्य श्री हरिसिंह भाटी, जीवनमल धाहेवा, मोतीलाल नाहटा, झूमरमल सिंघी आदि का सहयोग रहा।

प्रेषक - अणुव्रत समिति

इष्ट है समाधि

समणी अमित प्रज्ञा

'सव्वे पाणा सुहसाया दुहपडिकूला', सभी प्राणी सुख के इच्छुक हैं। यह आगमसूक्त 'शुक्ल संपन्नोऽहं स्याम्' की दिशा में अग्रसर करने वाला महत्त्वपूर्ण सूक्त है। सूर्य की किरणों के साथ ही सुख-प्राप्ति के साधनों को प्राप्त करने की प्रबल अभीप्सा से कठिन परिश्रम के साथ उनकी यात्राएं शुरू हो जाती हैं। दिन भर पदार्थ की खोज में लगा व्यक्ति स्वयं को भी भूल जाता है। शरीर रूपी पिंजरे में बंद पंछी अस्तांचल के साथ घर लौटते हैं। खाना-पीना, मनोरंजन सब चलता है। सोचते हैं—अब सुख-शांति की नींद लें। सूर्योदय के साथ फिर वही घोड़ा, वही मैदान है। मस्ती की नींद के लिए अपूर्व तैयारी करते हैं। कोमल शय्या, नीरव वातावरण, सब कुछ सही पर........

थकान दूर करने के लिए, सुख-शांति प्राप्त करने के लिए सुन्दर सुख-शय्या का निर्माण किया पर वह शय्या सुख का कारण न बनी। बनती भी कैसे? वास्तव में सुख-शय्या को जाना ही नहीं। आप्त पुरुषों ने ठाणं सूत्र में चार प्रकार की सुखशय्या बताई, जो शुक्लता से सम्पन्न बनने वालों के जीवन में समादरणीय हैं।

'सव्वे पाणा सुहसाया दुहपडिकूला', सभी प्राणी सुख के इच्छुक हैं। यह आगमसूक्त 'शुक्ल संपन्नोऽहं स्याम्' की दिशा में अग्रसर करने वाला महत्त्वपूर्ण सूक्त है। बन्धन कोई नहीं चाहता, सभी स्वतंत्रता के इच्छुक हैं। स्वतंत्रता हम सबका जन्मसिद्ध अधिकार भी है। बन्धन-मुक्ति की तीव्र अभीप्सा वाले प्राणियों को चाहिए कि वे—

"तमेव सच्चं णीसंकं,
जं जिणेहिं पवेइयं।"
इस आगम वाणी पर अखंड श्रद्धाभाव रखें।

1. णिग्गंथे पावयणे णिस्संकिते णिक्कंखिते

अर्थात् जिनप्रवचन में निःशकिता निःकांक्षिता।

2. सएणं लाभेणं तुस्सति परस्स लाभेणो आसारति

अर्थात् स्वलाभ में संतोष, परलाभ में अनाशंसा।

3. कामभोगे णो आसारति

अर्थात् कामभोगों में अनासक्ति।

4. वेयणं सम्मं सहमाणस्स

अर्थात् समुद्भूत वेदना में समभाव।

इन सुख-शय्याओं में सोने वाला ही वास्तव में सुख-शांति की नींद ले सकता है। अपेक्षा है इस सोच की, शांत मन से चिन्तन करने की—हम ऐसी सुख-शय्या में सोये हैं क्या? यदि नहीं, तो कोई बात नहीं, 'जब जागे तभी सवेरा।'

निर्ग्रन्थ प्रवचन में निःशंकिता

बन्धन कोई नहीं चाहता, सभी स्वतंत्रता के इच्छुक हैं। स्वतंत्रता हम सबका जन्मसिद्ध अधिकार भी है। बन्धन-मुक्ति की तीव्र अभीप्सा वाले प्राणियों को चाहिए कि वे—

"तमेव सच्चं णीसंकं, जं जिणेहिं पवेइयं।"

इस आगम वाणी पर अखंड श्रद्धाभाव रखें।

वीतराग वचनों को ज्यों का त्यों स्वीकार करें। कोई बात गले न उतरे तो भी उसमें शंका न करें, यह ऐसा ही है—ऐसा ही मानें। समझ में न आए तो केवलीगम्य कर दें। ऐसी श्रद्धा क्यूं अपेक्षित है? यह इसलिए जरूरी है, क्योंकि शंकाशील व्यक्ति समाधि को प्राप्त नहीं कर सकता—

"न हि संशयमनारुह्य नरो भद्राणि पश्यति।"

संशय पर चढ़कर मनुष्य कभी कल्याण को प्राप्त नहीं होता। विश्वास विश्व का श्वास है और वही विकास का सोपान है। संशय, विनाश का द्वार है।

शेक्सपीयर का कहना है—हमारी शंकाएं हमारे साथ विश्वासघात करती है और हमें उन अच्छाइयों से वंचित रखती हैं, जिन्हें हम प्रयास से पा जाते। जिन्दगी में भूलकर भी संदेह के रास्ते पर न जाएं, क्योंकि वह मृत्यु से भी भयानक और निर्दयी है। ज्ञाताधर्मकथा का एक अध्ययन श्रद्धा और शंका के परिणाम का सुन्दर निदर्शन कराता है। वहां सफलता का आधार ही सन्देहमुक्त अवस्था को, श्रद्धा को बताया गया है।

चंपानगरी में सार्थवाह का पुत्र सागरदत्त मयूरी के अण्डे के प्रति शंकित, कांक्षित हो जाता है। उसने सोचा—इस अण्डे से मेरे मनोरंजन का माध्यम मयूरी का बच्चा होगा या नहीं! ऐसा सोचकर वह उस अण्डे को बार-बार उलटता, पलटता। कभी कान के पास ले जाकर उसे बजाता। सन्देह से ऐसा करने से वह अण्डा अन्दर ही

अन्दर सारहीन हो गया। परिणामस्वरूप मयूरी का बच्चा प्राप्त करने में वह सफल नहीं हो सका। सन्देह ने आर्तध्यान की परिस्थिति पैदा की। सागरदत्त चिंतामग्न हो गया। शंकाशील कभी सफल नहीं होता। वैसे ही जो निर्ग्रन्थ प्रवचन के प्रति शंकाशील रहता है, वह कभी भी सुख-शय्या का अधिकारी नहीं बन सकता। वह इहलोक और परलोक—दोनों में ही परिभव को प्राप्त होता है।

जिनदत्तपुत्र सोचता है—इस अण्डे से मयूरी का बच्चा निश्चित रूप से होगा। मुझे पूरा विश्वास है। इस निःशंक आस्था से यथासमय मयूरी के सुन्दर बच्चा पैदा हुआ। असंदिग्ध अवस्था ने सफलता का मार्ग प्रशस्त किया। संदेहमुक्त मन सफलता का हेतु है। वैसे ही जो निर्ग्रन्थ प्रवचन से निःशंकित रहता है, वह सुख-शय्या का अधिकारी बनता है। जिनभाषित वचनों में भाव से सन्देह नहीं करके संसार-सागर का पार पाया जा सकता है।

बन्धन से मुक्ति की अभिलाषा रखने वाले की ही धर्म में रुचि होती है। वह सोचता है—मिथ्यात्व जैसा बड़ा रोग कोई दूसरा नहीं है। शारीरिक रोग तो एक जन्म में दुःख देता है पर यदि मिथ्यात्व को रोग लग गया तो वह कई जन्मों तक महादुःख देता है। मिथ्यात्व गहन अंधकार है और वह हमारा घातक शत्रु है। यह सोचकर सर्वप्रथम साधक मिथ्यात्व को नष्ट करने में तत्पर होता है। उसका उपाय है—संवेग, मुमुक्षाभाव, भीतर से मुक्त होने की उत्कट इच्छा। इसी इच्छा से वीतराग वचनों पर गहरी श्रद्धा होती है, शंका-संदेह को स्थान नहीं रहता।

बन्धन से मुक्ति की अभिलाषा रखने वाले की ही धर्म में रुचि होती है। वह सोचता है—मिथ्यात्व जैसा बड़ा रोग कोई दूसरा नहीं है। शारीरिक रोग तो एक जन्म में दुःख देता है पर यदि मिथ्यात्व का रोग लग गया तो वह कई जन्मों तक महादुःख देता है। मिथ्यात्व गहन अंधकार है और वह हमारा घातक शत्रु है। यह सोचकर सर्वप्रथम साधक मिथ्यात्व को नष्ट करने में तत्पर होता है। उसका उपाय है—संवेग, मुमुक्षाभाव, भीतर से मुक्त होने की उत्कट इच्छा। इसी इच्छा से वीतराग वचनों पर गहरी श्रद्धा होती है, शंका-संदेह को स्थान नहीं रहता।

शास्त्र कहते हैं—जहां दर्शन-विशुद्धि, वहां अनन्तानुबंधी क्रोध, अनन्तानुबंधी मान, अनन्तानुबंधी माया, अनन्तानुबंधी लोभ—ये सब अपना दूसरा स्थान खोज लेते हैं। वहां से पूरी विदाई ले लेते हैं। तत्त्वज्ञान की भाषा में अनन्तानुबंधी चतुष्क सर्वथा क्षीण हो जाता है। इनके क्षीण होने पर फिर नये सिरे से मिथ्यात्व के कर्म परमाणुओं का बंध नहीं होता। फिर विशुद्धि की दिशा में उसके चरण गतिमान रहते हैं। वह निर्ग्रन्थ प्रवचन में निःशंकित, निःकांक्षित इस सुखशय्या का अधिकारी बन जाता है। सुखशय्या का अधिकारी बन शुक्लता की ओर बढ़ता है।

स्व-लाभ में संतोष, पर-लाभ में अनाशंसा

संतोष शुक्लता की परम निशानी है। जीवन है, वहां सुख-दुःख, लाभ-अलाभ—ये सब परछाई की तरह साथ-साथ चलते हैं। सुख-शय्या में सोने के लिए आवश्यक है कि व्यक्ति अपने पास जो है, उसमें संतुष्ट रहे। अपने लाभ में संतोष का अनुभव करे। जो नहीं है, उसके लिए बेचैन न बने। न दूसरों के लाभ को हड़पने की कोशिश करे।

वर्तमान में केकड़ावृत्ति ने सर्वत्र अपना साम्राज्य फैलाया है। ऐसे समय में बहुत कठिन है—स्व-लाभ में संतोष, पर-लाभ में अनाशंसा। आचार्य महाप्रज्ञ ने कहा—

सितारे ऊपर हैं,
वे नीचे आना चाहते हैं।
वृक्ष नीचे हैं,
वो ऊपर जाना चाहते हैं।।
संतोष कहीं नहीं!

पर जिसके चरण निर्ग्रन्थ प्रवचन में गतिमान हुये हैं, वह चिंतन करता है—सब कुछ यहीं रह जायेगा, साथ कुछ भी नहीं जायेगा। क्यों इस माया-जाल में फसूं? वह पर-दर्शन की वृत्ति छोड़ स्व-दर्शन में अपने आपको लगता है।

वह स्थायी सुख चाहता है। अनासक्ति की दिशा में आगे बढ़ता है। अपने लाभ में उसे संतोष होता है, पर-लाभ की वह आकांक्षा नहीं करता, न उसे छीनने की कोशिश करता है। जब यह संतोषरूपी धन आ जाता है तो बाकी सारे धन धूल के समान दृष्टिगोचर होते हैं। अपनी फकीरी में मस्त रहने वाला, संतोष का अनुभव करने वाला प्राणी इस दूसरी सुख-शय्या का अधिकारी बनता है।

कामभोगों में अनासक्ति

हम असीम पदार्थों के बीच जी रहे हैं। क्षण भर के लिए सोचें—यदि अनासक्ति की चेतना नहीं जगी तो क्या होगी? हम किस भूमिका पर खड़े हैं—आसक्ति की या अनासक्ति की? यदि आसक्ति की तो हम शुक्लता से कोसों दूर हैं।

शुद्धता के लिए आवश्यकता है चिन्तन को नया मोड़ देने की। तुलसीदास ने कहा–

दौलत की दो लात है, तुलसी निश्चय कीन्ह।
आवत अंधा करत है, जावत करे अधीन।।

सुखशय्या में सोना है, पवित्रता की ओर बढ़ना है तो व्रत पर जोर लगाना होगा। जीवनशैली के प्रमुख अंग–संयम, व्रत, त्याग को बनाना होगा। एक सद्गृहस्थ व्यक्ति गृहस्थ जीवन में रहता हुआ भी बन्ध से मुक्ति का अधिकारी बन सकता है। 'माल भी खाओ और मोक्ष भी पाओ' यह कहावत चरितार्थ कर सकता है। कब?

जब संयमः खलु जीवनम्–इस घोष को अपना आदर्श बनाएं, संयम की चेतना को जगाएं। जागरण का यह गांडीव यदि हाथ में आ जाए तो आसक्तिरूपी शत्रु का संहार हो सकता है। आचार्य भिक्षु ने कहा–

जे समदृष्टि जीवड़ा
करे कुटुम्ब प्रतिपाल।
अंतर स्यूं न्यारा रे,
ज्यूं धाय खिलावै बाल।।

जहां केवल कामना होती है, किन्तु शरीर के विशिष्ट स्पर्श द्वारा कोई भी उपयोग, भोग एवं अनुभव नहीं होता–वह काम है। जिनका शरीर-स्पर्श द्वारा अनुभव किया जाता है–वह भोग है। मुक्ति की अभिलाषा करने वाला इन काम-भोगों के प्रति अनासक्त रहे। काम भोगों की लालसा नहीं रखने वाला ही इस सुख-शय्या का अधिकारी हो सकता है।

समाधि का अधिकारी बनने के लिए चिन्तन का महत्त्वपूर्ण सूत्र है–

दीखने में सुन्दर किंपाक फल को खाने का परिणाम मृत्यु होती है, वैसे ही भोगने में आनन्ददायी भोगों का परिणाम सुन्दर नहीं होता है।

कामभोग सतायें नहीं, उसके लिए रसों का अत्यधिक मात्रा में उपयोग न करें। रसों के अधिक सेवन से कामभोग उद्दीप्त होते हैं और फिर वैसे ही सताते हैं, जैसे स्वादिष्ट फल वाले वृक्षों को पक्षी सताते हैं।

समुद्भुत वेदना में समभाव

हाड़-मांस का पुतला यह औदारिक शरीर रोगों का घर है। कर्मों के बल से जब भी रोग आक्रमण करे, यह चिंतन करें–

* किए हुए कर्मों को भोगे बिना मुक्ति नहीं है।
* यह मेरा दुःख लम्बे समय तक रहने वाला नहीं है।
* आत्मा अलग है, शरीर अलग है। कष्ट शरीर को हो रहा है, आत्मा को नहीं।
* आत्मा शाश्वत है, वह कभी मरने वाली नहीं है।
* समभाव से सहन करूंगा तो मेरे कर्म दूर होंगे, निर्जरा होगी। मेरी पवित्रता में चार चांद लग सकते हैं। अतः सहन करना मेरा धर्म है।

ऐसा चिंतन कर वेदना को समभाव से सहने वाला ही इस सुखशय्या का अधिकारी बन सकता है।

शरीर-वेदना के समय कोई कह सकता है–यह भूल मेरी नहीं है, मुझे बनाने वालों की है या यह मेरे अभिभावकों की भूल है, उन्होंने मेरी अच्छी तरह से संभाल नहीं की। पर यदि हमने दूसरों की तरह कठिन परिश्रम नहीं किया, मेहनत नहीं की, परिणामस्वरूप सफलता हमारे से दूर रही। यह किसकी भूल है?

यह हमारी अपनी ही भूल है। मूल्यवान मनुष्य जन्म मिला, वीतराग का शासन मिला, सतगुरु मिले, हमारा परम कर्तव्य है इस मनुष्य जन्म को सार्थक बनाएं। सपने में देखा था जीवन सौंदर्य है, पर जागने पर पता चला कि जीवन कर्तव्य है। "Attention to little duties prepares us to meet larger ones."

कर्तव्य चाहे छोटा हो या बड़ा, उसे स्वीकार कर लिया तो फिर श्रद्धा के साथ उसे पूरा करना चाहिए। समझदार, चिंतनशील, विवेकशील प्राणी होने के नाते हमारे यह कर्तव्य है कि हम इन सुख-शय्याओं को अपनाकर बन्धन से मुक्ति की दिशा में अग्रसर हों, पवित्रता की दिशा में अग्रसर हों। हम वास्तव में सुख-शय्या में सोएं, पवित्रता की दिशा में आगे बढ़ें। समाधि सभी को इष्ट है। समाधि पाने की राह यही है।

जहां केवल कामना होती है, किन्तु शरीर के विशिष्ट स्पर्श द्वारा कोई भी उपयोग, भोग एवं अनुभव नहीं होता–वह काम है। जिनका शरीर-स्पर्श द्वारा अनुभव किया जाता है–वह भोग है। मुक्ति की अभिलाषा करने वाला इन काम-भोगों के प्रति अनासक्त रहे। काम भोगों की लालसा नहीं रखने वाला ही इस सुख-शय्या का अधिकारी हो सकता है। कर्त्तव्य चाहे छोटा हो या बड़ा, उसे स्वीकार कर लिया तो फिर श्रद्धा के साथ उसे पूरा करना चाहिए। समझदार, चिंतनशील, विवेकशील प्राणी होने के नाते हमारे यह कर्त्तव्य है कि हम इन सुख-शय्याओं को अपनाकर बन्धन से मुक्ति की दिशा में अग्रसर हों, पवित्रता की दिशा में अग्रसर हों।

रूपान्तरण संभव है

योगी भंवरलाल बैद

हमारे ऋषि, मुनि एवं योग विद्या के गुरुजनों का अकाट्य मत है कि योग से, शारीरिक, मानसिक व आध्यात्मिक उन्नति होती है और इसे अपनाकर सुखी, शान्तिमय और आनन्दमय जीवन जीया जा सकता है। योग व्यक्ति को रोगों से बचाता है। साथ ही योग द्वारा अस्सी प्रतिशत रोग दूर किये जा सकते हैं। हालांकि इन लाभों में सब कुछ निहित है लेकिन इसमें से एक विषय पर ज्यादा गहराई से अध्ययन के लिए हमें ऐसे व्यक्ति या व्यक्तियों को लेना था जो शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक दृष्टि से बीमार हो और जिनमें बुरी आदतें व बुराईयां विद्यमान हों और उसके लिए चुना गया सेन्ट्रल जेल, जयपुर में आजीवन कारावास भुगत रहे कैदियों को।

खोजपूर्ण अध्ययन

हमने ऐसे 30 कैदियों को चुना जिनमें 26 व्यक्तियों को आजीवन कारावास हत्या करने के अपराध में मिली हुई थी। बाकी तीन बलात्कार के मामले में तथा एक डकैती के मामले में सजा भुगत रहा था। इनको करीब तीन वर्ष से राजस्थान योग परिषद के पूर्व अध्यक्ष श्री एस.के. जिन्दल बराबर जेल में जाकर योग की शिक्षा दे रहे थे। श्री जिन्दल अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में एक जाने माने योगी हैं और इनको प्रायः गुरुजी के नाम से संबोधित करते हैं। इन कैदियों में अधिकांश 30 वर्ष की आयु से कम थे, और वे करीब दो वर्ष से योग कर रहे थे।

इस प्रोजेक्ट को हाथ में लेते समय मैं काफी झिझक रहा था कि मुझे काफी खूंखार व्यक्तियों से संबंद्ध स्थापित करना पड़ेगा, जैसे कि शेर के पिंजरे में हाथ डालना। इसी हिचकिचाहट के साथ मन को पक्का कर पहली बार जब जेल में इनसे मिलने गया तो दंग रह गया। प्रत्येक कैदी ने गुरुजी को दोनों हाथों से दोनों पैर छूकर अभिवादन किया।

पांच-छः महीने जेल में योग-प्रशिक्षण दिये जाने के पश्चात् मैंने एक पच्चीस प्रश्नों की प्रश्नावली तैयार की व उन्हें कहा कि वे निःसंकोच इनका उत्तर लिखें। कुल तीस कैदियों से पूछे गये सभी प्रश्नोत्तरों का विश्लेषण कर, उनके संयुक्त उत्तर नीचे दिए जा रहे हैं। किसी भी समय उनको तनिक भी यह आभास नहीं होने दिया गया कि यह प्रश्न किसी अनुसंधान के लिए किये जा रहे हैं।

प्रश्न : योग करने से पूर्व शारीरिक स्थिति?

उत्तर : अधिकांश को आलस्य आना, कई बीमारियों से ग्रस्त, दस कैदी साईटिका से ग्रस्त, आठ हाईपरटेंशन से, दस जोड़ों के दर्द से, एक मिरगी से तथा एक मानसिक रोगी। अधिकांश में नींद न आना, घोर तनाव में रहना, पेट की विभिन्न बीमारियां, अपच, मोटापा, बीड़ी-सिगरेट व नशे की लत।

प्रश्न : योग करने से पूर्व मानसिक स्थिति?

उत्तर : अधिकांश के मन में चिड़चिड़ापन रहना और दूषित विचारों का आना। तीन कैदी अपने गुस्सैल व मारपीट व्यवहार के कारण पन्द्रह जेलों से तिरस्कृत होकर आये हुए। कई कैदियों पर हत्या के कई मुकदमे थे। अधिकांश कैदी क्रोधी, गुस्सैल व अहंकारी स्वभाव के।

प्रश्न : योग करने से पूर्व आध्यात्मिक स्थिति?

उत्तर : अधिकांश में नहीं के बराबर। अधिकांश नास्तिक, अपने आपको सब कुछ समझने वाले अहंकारी।

प्रश्न : योग करने की रुचि कैसे हुई?

उत्तर : गुरुजी श्री एस.के. जिन्दल की प्रेरणा से व कैदियों द्वारा योग के लाभ देखने व बतलाये जाने के कारण एवं अपने रोगों से छुटकारा पाने के लिए।

प्रश्न : योग के पश्चात् की शारीरिक स्थिति?

उत्तर : अधिकांश में चुस्त रहना, आलस्य से छुटकारा, रोगों से मुक्ति। साईटिका, हाईपरटेंशन, जोड़ों का दर्द गायब, मिरगी के दौरे बंद, मानसिक रोगी स्वस्थ्य, पेट की बीमारियों से मुक्ति।

प्रश्न : प्रयोग के बाद की मानसिक स्थिति?

उत्तर : अधिकांश के मन में शांति रहना, आपकी प्रेम व सद्भावना का होना। अब नींद अच्छी आती है। आधे कैदियों में नशे से मुक्ति, बाकी में नशे की भारी कमी। मानसिक तनाव दूर हुआ। आशावादी विचार आने लगे। बुरे विचारों से मुक्ति हुई। ब्रह्म मुहूर्त में उठने लगे। दिनभर उत्साह। जो काम पहले आठ घंटे में करते थे, वे छह घंटे में कर लेते हैं।

प्रश्न : अब आध्यात्मिक स्थिति?

उत्तर : अधिकांश में योग साधना से ईश्वर में पूर्ण आस्था हुई है। अधिकांश अपने इष्टदेव का स्मरण करने लगे। भजन पूजन करने लगे। धर्म में आस्था हो गई।

प्रश्न : रिहाई के पश्चात् किस तरह की जिंदगी व्यतीत करेंगे?

उत्तर : कोशिश यही रहेगी कि हमारी वजह से किसी को नुकसान न हो तथा समाज एवं जनसेवा में विश्वास करेंगे।

कुछ चुनिन्दा कैदियों के संक्षेप में विचार—

1. श्री ऋषिपाल नागर—शारीरिक स्तर पर लाभ तो होते ही हैं, महत्त्वपूर्ण है व्यक्तित्व में आमूलचल परिवर्तन का।
2. श्री कल्लू खां—इससे इंसान में नया दृष्टिकोण व एक एक नई सोच जो समाज व जीवन के प्रति आदर्शवादी होती है। इंसान का पहला हथियार है—स्वस्थ शरीर और योग में मेरे विचार से 80 प्रतिशत शरीर को लाभ होता है।
3. श्री सिंगरामसिंह—योग उतना ही जरूरी है जितना शरीर के लिए भोजन की जरूरत होती है। योग से आदमी का शरीर स्वस्थ और निरोगी रहता है और आदमी की आयु बढ़ती है। योग एक जीने की कला है।
4. श्री किशोर कुमार पारीक – योग के द्वारा सबसे पहला गुण जो उभरकर सामने आता है वह है नियंत्रण। पहले व्यक्ति शरीर पर नियंत्रण सीखता है और इसके पश्चात् मन पर नियंत्रण। इसके द्वारा कुकर्मों की संभावनायें न्यून रह जाती हैं। व्यक्ति स्वयं आत्मानुशासन में बंध जाता है। योग का दूसरा गुण है कि धैर्य सीखने को मिलता है। योग साधक किसी भी परिस्थिति में धैर्य नहीं खोता। तीसरी चीज जो योग से प्राप्त होती है वह है—दृढ़ता। योग से काया को निरोगी रखना तो मात्र एक चीज है किन्तु मानसिक शांति और आध्यात्मिक लाभ इसके बोनस हैं। वास्तव में योग द्वारा ऐसे व्यक्तित्व का निर्माण होता है जो समस्त समाज के लिए कल्याणकारी होता है।
5. श्री अनिलदान—योगासन से मानव का मानसिक, आध्यात्मिक एवं शारीरिक विकास होता है। मेरे विचार में इस दुनिया में कोई ऐसा व्यक्ति नहीं है जो कि क्रूर हो और योगासन करने से उसकी मानसिक स्थिति में परिवर्तन न आये। ऐसा देखा गया है कि बीमारियां बड़े-बड़े डॉक्टरों से ठीक नहीं हुई, वह योगासन करने से ठीक हो गई।

निष्कर्ष :

इन अध्ययनों से यह पूर्णतया प्रमाणित हो गया है कि योग से शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक उन्नति होती है। इसके अलावा उनकी बुरी आदतें भी छूट जाती हैं। भाईचारे में वृद्धि होती है और शांति का साम्राज्य बनता है। यह भी प्रमाणित हुआ है कि इसके लाभ सर्वकाल, देश, जाति व उम्र के लिए शाश्वत सत्य है।

योग से जहां कैदियों की शारीरिक दृष्टि में बेहतर बदलाव आया, वहीं मानसिक सोच भी विकसित हुई। जिस विकार की सजा वे भुगत रहे हैं, उसका अहसास भी हुआ और अब वे समाज की मुख्यधारा से जुड़ना चाहते हैं।

जूडस का पश्चात्ताप

बोधकथा

जूडस जीसस का शिष्य था। कहते हैं, एक बार उसने लोभ में आकर चांदी के तीस सिक्कों के लिए यह भेद खोल दिया कि जीसस कहां छिपे हुए हैं और परिणामतः जीसस पकड़े गए। जिस दिन जीसस को सूली पर चढ़ाया जा रहा था, उस दिन जूडस भी उस भीड़ में उपस्थित था। अंतिम समय में जीसस के मुंह से शब्द निकले- 'हे परमात्मा! इन बेचारे अज्ञानियों को क्षमा करना। इन्हें पता नहीं कि ये क्या कर रहे हैं।' इन शब्दों को सुनते ही जूडस की आत्मा कांप उठी। उसने पहली बार महसूस किया कि उसके लालच के कारण एक निरपराध और क्षमावान व्यक्ति को मृत्युदंड मिलने जा रहा है। उसे ऐसा लगा मानो कोड़ियों के मोल उसने हीरा गंवा दिया। उसने वे सिक्के वहीं फांसी के तख्त पर फेंक दिए। लेकिन इसके बावजूद वह अपने आपको क्षमा नहीं कर सका। दूसरे दिन ही उसने आत्महत्या कर ली।

जूडस की ही तरह जब कोई मनुष्य बेईमानी, चोरी, लालच या किसी प्रकार का कुकृत्य करता है, तो वह भूल जाता है कि वह अपने अंदर बैठी पवित्र आत्मा को बेच रहा है। जब तक उसे अपने किए पर पछतावा होता है, वह अपनी अमूल्य निधि गंवा चुका होता है।

Mantra Meditation

Mukhya Niyojika Sadhvi Vishrutvibha

Mantra plays an important role in Preksha Meditation. It is also helpful in realizing the self. In Preksha Meditation mantras are used for improving mental concentration.

There are two ways of achieving the concentration of mind:

1. *Jap* (Chanting of Mantras)
2. *Dhyan* (Meditation)

The human mind is inherently unstable. It does not concentrate on one point for a long time. The chanting of mantra is a tool that is generally used for making the mind focused on one object. Mantra chanting is a simple exercise for achieving better concentrations. Many bijaksharas (seed letters) and terms or phrases that can be recited incantatory are available for chanting. Among these, '*Aum*', '*hreem*', '*shreem*', '*kleem*' etc., are seed letters. These are invested with great powers. An articulation of a word generates special kind of sound waves and vibrations, which influence our mind.

Chanting of mantras is by three ways:

1. *Jap*
2. *Antarjap*
3. *Mansik jap* (mental jap)

These are characterized by high voiced, low voiced, and silent chanting of the mantras, respectively. Basically, the whole process constitutes an effort to migrate from the gross to the subtle. Gross sounds produce gross vibrations and subtle sounds produce subtle vibrations. Subtle vibrations are for more powerful than the gross ones.

In the initial stages, in bringing about a change, gross vibrations play key role. In order to achieve higher levels of change in advanced stages of meditation, it is essential to be able to move towards the subtle vibrations. Chanting of mantra at a higher pitch is gross and constitutes the first stage. Low-toned chanting of mantras constitutes the next and more advanced stage. The highest level of chanting of mantra is the silent one, in which the distance between the meaning and the words disappear. At this stage, language and thought get closer to each other and become indistinguishable. The degree of effectiveness varies and depends largely on the correct recitation of the mantras. For the chanting of mantra to be effective and fruitful, it is essential that recitation be done diligently and systematically in a correct manner. Wrong pronunciation of words, lack of mental concentration during chanting, and too fast or too lethargically performed chanting are some of the major obstacles in realizing the benefits of this technique.

There are a number of mantras that have been successfully applied during Preksha Meditation training programs. For example, '*Arham*', and '*Aum Hreem Arham Namah*' are the common ones. Among these '*Arham*' has been explained earlier.

The technique of recitation of the mantra '*Aum Hreem Arham Namah*' is as follows:

While reciting the word '*Aum*', concentrate the mind on the tip of the nose, the center of vital energy. Try to perceive the mantra '*Aum*' on this center. Then shift your attention to the middle of the eyebrows, the center of intuition, and perceive the mantra '*Hreem*' there. Now focus your total attention on the middle of the forehead, the center of enlightenment and visualize the mantra '*Arham*'. Towards the end, focus your concentration on the front part of the head, the center of peace and perceive the word '*Namah*' here.

In the first stage, recite the mantra. In the next stage, realize the mantra on the specific center with bright white colour. At this stage, mantra becomes meditation.

Meditation : Creating Your Present & Future

Samani Charitra Pragya

Our universe is based on the 'Law of Attraction' which in the simplest terms states that 'What you think you become'. Each person on planet earth is equally entitled to the free flowing peace, love, joy, abundance, compassion and generosity it has to offer. Everyone has the means within them to actively participate in manifesting anything, condition or circumstance they want. The challenge most of us face is how to focus on what we want long enough to have it come to fruition. Meditation is a gateway to greater concentration, thought control and intentional manifesting.

Still wondering why people meditate, what can it do for you? This article is a collection of foscinating research facts about the effects of meditation and exactly how people from schoolroom to boardroom are benefiting from meditation. Children need to feel safe in school because pressure, stress, and fear undermine learning. This distorted picture is made worse by the escalating incidence in both children and adolescents of depression and other stress-related disorders, which have dramatic effects on learning and social development and attention disorders.

"The problem is stress," says William Stixrud, Ph.D., a prominent clinical neuropsychologist in Silver Spring, Maryland, who specializes in work with children and adolescents and particularly the effects of stress on the brain. "Not only does stress interfere with functions such as attention, memory, organization, and integration, but prolonged stress actually kills brain cells and shrinks the brain's main memory structures. Lifelong stress level is the main predictor of risk for Alzheimer's disease and other forms of dementia. Stress not only interferes with their learning and retention in the short run but also burns out their brains in the long run." People that meditate recover more quickly from diseases and will not often experience situations as stressful. (Time Magazine 27/10/03)

Once thought of meditation as a ritual performed by men who shaved their heads, wore long robes and lived in a mountain cave, this mind quieting, stress relieving natural self-healing practice is becoming so commonplace that corporations such as Deutsche Bank, Google and Hughes Aircraft recognize the intuitive powers of it and offer meditation classes to their employees.

A 2007 survey by the government found that about 1 out of 11 Americans, that's more than 20 million people meditated the past year. This widening acceptance has much to do with the continuing research into the effects and benefits of meditation. The first scientific research on meditation began at Yale University in the 1930s. After that, numerous studies have shown evidence that practicing meditation can ease pain, improve concentration and immune function, lower blood pressure, curb anxiety and insomnia, and even help prevent depression. Studies on the effects meditation has on the brain and body have been going on for quite some time at institutions such as the Brain Imaging Laboratory at the University of Wisconsin,

Massachusetts Institute of Technology, Yale and the Benson-Henry Institute for Mind-Body Medicine at Harvard Medical School.

Scientific Benefits

Clinical findings from the work done by all these institutions for mind-body medicine show that people who meditate correctly and on a regular basis have produced measurable changes.

For instance, eighty percent of hypertensive meditation patients lowered their blood pressure and decreased meditations while 16% were able to discontinue using their medication all together. One-hundred percent of patients who suffered with insomnia reported improved sleep from meditating and the majority of them were able to reduce or eliminate sleeping medication. In addition, folks who suffer from chronic pain reduced their physician visits by 36% and open heart surgery patients had fewer post-operative complications, all due to a regular practice of meditation. However, while sleeping, your use of oxygen drops 8%, but during a meditation session, it drops 10 to 20%, hormones with a calming effect like melatonin and serotonin increase as a result of meditating, whereas the stress hormone cortisol decreases. Findings concluded that women who experience severe PMS had a 57% reduction in physical and psychological symptoms. And, infertile women who meditate have a 42% conception rate. In addition, these women also showed decreased levels of depression, anxiety, and anger.

The research into meditation has also turned up some interesting physical results. Areas of the brain which deal with attention and processing sensory input have been found to actually thicken. Sara Lazar, a psychologist at Harvard Medical School noted. "These increases are proportional to the time a person has been meditating during their lives". She showed that the gray matter of twenty men and women who meditated for just 40 minutes a day was thicker than that of people who did not. Her research suggests that meditation may slow the natural thinning of that section of the cortex that occurs with age. People who meditate for many years often have a biological age that is between 5 and 10 years lower than their chronological age.

Meditation has an immense positive effect on the three great indicators of aging: our sense of hearing, our blood pressure and our eyesight. According to the latest research, meditation can train our brains and even change its structure positively. The current buzzword in brain science is 'neuroplasticity'. This means that the brain can actually change structure and function. What is new is the finding that meditation can do this, and does so in ways that are tremendously beneficial for health and well being.

In a brain-scan study of meditators who have practiced for a long-time was compared with a control group that never meditated. Brain scanning showed the meditators had increased thickness in areas of the brain associated with attention and with sensitivity to internal sensations of the body. A consequence of this is greater awareness of the body's responses to external stimuli. Another UCLA study published that meditators' brains have larger volume in areas important for attention, focus and regulating emotion. According to Eileen Luders, the study leader and neuroscientist, meditators also have more gray matter, which could sharpen mental function and affect many biological processes.

Steve Reidman, a fourth-grade teacher in

North Hollywood, CA, reports that teaching meditation to children has helped curb fighting and also sharpening students focus. "You can just watch them breathe deeply and settle down rather than lashing out." Another study showed that Los Angeles preschooler's ability to pay attention and focus improved after they were taught meditation.

The University of Wisconsin discovered that employees that meditated have a higher tolerance, more joy in their work, a more cheerful and more optimistic attitude and higher energy levels. It is also clear that conflicts and unpleasant relationships among employees decrease, preventing stress-related illness when they start to meditate.

The team at the University of California Los Angeles said that meditation may slow the worsening of AIDS in just a few weeks, perhaps by affecting the immune system. Even it could offer a cheap and pleasant way to help people battle the incurable and often fatal condition. The more often the volunteers meditated, the higher their CD4 T-cell counts - a standard measure of how well the immune system is fighting the AIDS virus. The CD4 counts were measured before and after the two-month program. "This study provides the first indication that meditation training can have a direct impact on slowing HIV disease progression," said David Creswell, who led the study.

American Journal of Cardiology and American Heart Association published the study of the patients who were practicing meditation everyday reduced thickening of coronary arteries, thereby decreasing the risk of heart attack and stroke, showed improvements in blood pressure, insulin resistance, and autonomic nervous system tone.

Meditation may be an effective remedy in treating insomnia. Dr. Ramadevi Gourineni, principal study investigator and director of the insomnia program at Northwestern Memorial Hospital in Illinois, says insomnia is thought to be a 24-hour problem of hyper-arousal. By teaching people how to relax and clear their minds during the day, they sleep better at night. Findings of this study were presented at SLEEP 2009, the 23rd Annual Meeting of the Associated Professional Sleep Societies.

Another new report gives further evidence to support that meditation may reduce depression. For people struggling with severe depression, practicing meditation may offer mood-lifting benefits. In a recent pilot study, researchers randomly assigned 28 people dealing with depression (all of whom had previous depression episodes and thoughts of suicide) to two groups: One group continued their usual treatment, while the other had a healing approach that combines meditation with cognitive behavior therapy. Results showed that symptoms of depression decreased from severe to mild levels in the MBCT group, but remained the same in the group of participants receiving conventional care only.

How does it occur?

Nearly all forms of meditation have one thing in common, that is relaxing the body. When the body relaxes, the mind follows. Directly experiencing the inter-relationship of the body and mind, is then a significant benefit of meditation. This experience is a doorway to increasing self

awareness and self empowerment. The relationship between body and mind is a parallel direction of scientific and medical study. That they do affect each other in positive and negative ways is now pretty much undisputed, and the complexity of ways and means continues to be revealed. With this understanding has emerged the significant role that stress plays in the development of illness and dis-ease.

Neuroscientists have found that meditators shift their brain activity to different areas of the cortex - brain waves in the stress-prone right frontal cortex move to the calmer left frontal cortex. This mental shift decreases the negative effects of stress, mild depression and anxiety. There is also less activity in the amygdala, where the brain processes fear. Several studies have demonstrated that subjects who meditated for a short time showed increased alpha waves (the relaxed brain waves) and decreased anxiety and depression.

As an overview, there is a long list of physiological and health benefits of meditation. To put in brief, meditation stabilizes the autonomous nervous system, reduces the heart beat, reduces the speed of breathing and the intake of oxygen gets stronger, drops blood pressure, increases galvanic skin response, improves stomach function and bowel function, heightens endocrine function, enhances immune and resistance power, brings in a heightened energy level and vitality and increases serotonin that influences moods and behavior. Meditation instructs the practitioner to become mindful of thoughts, feelings, and sensations and to observe them in a nonjudgmental way. This practice is believed to result in a state of greater calmness and physical relaxation, and psychological balance. Practicing meditation can change how a person relates to the flow of emotions and thoughts in the mind.

The scientifically proven results such as reducing stress, relieving anxiety and strengthening the immune system, meditation also having the ability to quiet one's mind and retreat to a thought-free state of calmness that opens the connection to higher intelligence and greatly enhances problem-solving abilities. As you tapping into the vast wisdom of the universe, you continue to welcome the innate reconnection of your mind, body and spirit, and you will naturally begin to take a holistic approach towards healing yourself and living your life. When you calm your mind and focus on what you want with desire, belief and expectancy, the gates of the universe open up to provide you the fastest and easiest path towards obtaining it.

सप्तदिवसीय प्रेक्षाध्यान शिविर

तुलसी अध्यात्म नीडम्, जैन विश्व भारती, लाडनूं में दिनांक 31 जुलाई से 6 अगस्त 2011 एवं 24 अगस्त से 30 अगस्त 2011 को आध्यात्मिक वैज्ञानिक व्यक्तित्व-निर्माण के उद्देश्य से प्रेक्षा-प्राध्यापक, आगममनीषी, प्रोफेसर मुनिश्री महेन्द्रकुमारजी के निर्देशन में सप्तदिवसीय प्रेक्षाध्यान शिविर आयोजित होगा।

आवेदन की अंतिम तिथि : 15 जुलाई 2011

: शिविर का स्थान :

तुलसी अध्यात्म नीडम्, जैन विश्व भारती, लाडनूं, राजस्थान

सम्पर्क सूत्र : श्री जीतमल गुलगुलिया (09667280609)

(01581 - 222119)

E-mail : jainvishvabharati@yahoo.com

जिज्ञासा आपकी - समाधान परमपूज्य का

प्रश्न - ज्ञान समाधि और केवलज्ञान में क्या अन्तर है?

उत्तर - केवल ज्ञान तो परिणाम है। ज्ञान होना भी परिणाम है। ज्ञान समाधि का अर्थ है—ज्ञान ही रहने देना, उसे संवेदन नहीं बनाना।

प्रश्न - क्या ज्ञानयोगी वही होगा जो किसी ग्रंथ को पूर्ण सत्य न माने?

उत्तर - कोई भी ग्रन्थ पूर्ण सत्य का प्रतिपादक नहीं होता। वह सत्य के कुछेक पर्यायों का प्रतिपादक होता है। भाषा में कुछेक पर्याय ही उतरते हैं, अनंत पर्यायों में से कुछेक। भाषा में इतनी शक्ति भी नहीं है कि वह सब पर्यायों को कह सके। 'अ' अक्षर के अनन्त पर्याय हैं। वाणी में हजार भी नहीं उतरते। पूर्णता की बात ही कहां है।

प्रश्न - क्या संकल्प-विकल्प को रोकना ही समाधि है। समाधि, एकाग्रता और ध्यान में क्या अन्तर है?

उत्तर - केवल संकल्प-विकल्प को रोकें और ध्येय का बोध न रहे तो जागृत समाधि नहीं हो सकती। ध्येय-शून्य संकल्प-विकल्प का निरोध है—शून्य समाधि। संकल्प-विकल्प की शून्यता और ध्येय की शून्यता—दोनों एक नहीं हैं। समाधि में संकल्प-विकल्प की शून्यता है पर ध्येय की शून्यता नहीं है। समाधि के प्रकर्ष में ध्येय का रूपान्तरण हो जाता है। दृष्टि, द्रष्टा और दर्शन; ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय; ध्याता, ध्यान और ध्येय—इनमें से प्रत्येक त्रिक एकात्मक बन जाता है। इसे उदाहरण के द्वारा समझें। आत्मा ध्येय है। मैं उसका साक्षात् करना चाहता हूं। मैं द्रष्टा हूं। आत्मा दृश्य है। मेरी दर्शन की अपनी प्रक्रिया है। एकाग्रता के द्वारा आत्मा को देखूं—यह है मेरा दर्शन। द्रष्टा, दृश्य और दर्शन-ये तीनों बराबर चल रहे हैं। मैं उस बिन्दु पर पहुंच जाऊं कि जहां आत्मा का साक्षात्कार हो जाए, फिर न ध्येय रहा और न ध्यान रहा। दोनों समाप्त हो गए। ध्येय, ध्याता और ध्यान—सब एक हो गए। एकाग्रता साधन है। वह ध्यान में भी होती है और समाधि में भी होती है। जैसे धारणा का प्रकर्ष ध्यान है, वैसे ही ध्यान का प्रकर्ष समाधि है। समाधि की एकाग्रता ध्यान की एकाग्रता से बहुत प्रकृष्ट होती है।

प्रश्न - द्रष्टा का स्वरूप क्या है?

उत्तर - द्रष्टा का शब्दार्थ है—देखने वाला। चेतना शुद्ध हो, उसमें कोई विकल्प न हो, उस भूमिका का नाम द्रष्टा है। इस भूमिका में केवल चैतन्य का प्रवाह होता है। दूसरा कोई नाला उसमें नहीं मिलता। न प्रियता और न अप्रियता का भाव। न राग और न द्वेष का मनोभाव। न संवेदन और न प्रतिक्रिया। चैतन्य और केवल चैतन्य। इसे कुछ साधकों ने साक्षीभाव कहा है और कुछ ने शुद्ध उपयोग कहा है।

प्रश्न - चैतन्य को केन्द्रित करो, चित्त को केन्द्रित करो या मन को केन्द्रित करो—तीनों एक हैं या भिन्न-भिन्न?

उत्तर - चैतन्य व्यापक है। चित्त उससे छोटा है और उससे भी छोटा है मन। चित्त (बुद्धि) स्थायी तत्त्व है। मन उत्पन्न होता है और नष्ट होता है। फिर उत्पन्न होता है और नष्ट होता है। जब हम कहते हैं—चैतन्य को केन्द्रित करो तो उसका अर्थ है—चित्त की निर्णयात्मक शक्ति को आत्मा में विलीन करो। जब हम कहते हैं—मन को केन्द्रित करो तो उसका अर्थ है—संकल्प-विकल्प का निरोध करना।

पाठकों से निवेदन

प्रेक्षाध्यान के आगामी अंक निम्न विषयों पर आधारित होंगे।
पाठकों, रचनाकारों एवं लेखकों से अनुरोध है कि
वे निम्न विषयों को केन्द्र में रखकर अपनी रचनाएं प्रेषित करें।

	विषय	माह	भेजने की अंतिम तिथि
1.	ध्यान और अनुकंपा की चेतना	जुलाई	15 जून, 2011
2.	ध्यान और यथार्थ दर्शन	अगस्त	15 जुलाई, 2011
3.	ध्यान और नैतिकता	सितम्बर	15 अगस्त, 2011
4.	ध्यान और संयम	अक्टूबर	15 सितम्बर, 2011
5.	ध्यान और विरति	नवम्बर	15 अक्टूबर, 2011

विशेष संदर्भ - आचार्य महाप्रज्ञ का 92वां जन्म दिवस, प्रज्ञा दिवस, आषाढ़ कृष्णा तेरस, 29 जून

यह 'नस' किसके लिए! दूं किन हाथों में!

शुभू पटवा

सिर्फ दो ही बार यह अवसर आया, जब इस गर्दन को किसी के हवाले करते समय अकथ सुखानुभूति का अहसास हुआ। दूसरी बार वाली घटना का जिक्र पहले करना चाहूंगा। बात आचार्य तुलसी के महाप्रयाण (जून 1997) के बाद की है। उनकी अनुपस्थिति में आचार्य महाप्रज्ञ का पहला चातुर्मास गंगाशहर में हुआ था। किसी प्रसंग में आचार्य महाप्रज्ञ का निर्देश हुआ कि मैं उनके दर्शन तो रोज कर लिया करूं। मैं उन दिनों रोज नहीं जाया करता था। वर्षों तक अपने 'स्व-निर्वासन' के बाद मेरा आना-जाना फिर शुरू ही हुआ था। जब गंगाशहर प्रवास की घोषणा हुई और गणाधिपति गुरुदेव तुलसी तथा आचार्य महाप्रज्ञ का बीकानेर शहर में प्रथम मिलन हुआ, तो ये आंखे (मैं) गवाह नहीं थी। तात्पर्य यह कि मैं उपस्थित नहीं था। इसलिए कि आना-जाना आम लोगों की तरह शुरू नहीं हुआ था। बेशक मेरा 'स्व-निर्वासन' टूट गया था। और, यह तोड़ा था-डॉ. जे.एम. जैन 'मरोठी', श्री भंवरलाल डागा (जो फिर महासभा के अध्यक्ष भी रहे) और श्री इंदरचंद डागा ने। डॉ. मरोठी अक्सर घर आते और मुझे 'पाटी' पढ़ाते कि 'मैं' गुरुदेव के दर्शन करूं। इसमें हर्ज क्या है? इस रोज-रोज की 'पाटी' ने मुझे तैयार किया और अपना 'स्व-निर्वासन' तोड़ मैं लाडनूं पहुंचा-उन तीनों के साथ। डॉ. मरोठी को संकेत शायद था कि वे मुझे दर्शन के लिए प्रेरित करें। वे सफल रहे और मैंने लाडनूं में दर्शन किए। इस तरह मेरा 'स्व-निर्वासन' तो टूटा, पर आना-जाना अनवरत (या निर्बाध) नहीं हुआ।

लंबे-लंबे अंतराल के बाद जाने और दर्शन करने का सिलसिला शुरू हुआ, तो किसी एक मौके पर लाडनूं में ही दर्शन के दौरान आचार्य महाप्रज्ञ (तब शायद वे युवाचार्य थे) ने गुरुदेव से कहा-'इसे आपने बहुत खुला छोड़ दिया, अब बांधो।' गुरुदेव तुलसी मेरी ओर ही मुखातिब थे, पर उत्तर आचार्य महाप्रज्ञ को दे रहे थे कि-'यह जो कुछ कर रहा है, हमारा ही काम कर रहा है, इसे बांधने की जरूरत नहीं। ' यह कह मुझे प्रस्थान की अनुमति यह पूछते हुए मिली कि 'मैं अब कब आऊंगा?' मुझे स्वयं ही पता कहां था, कि मैं इसका उत्तर देता। मैं अबोला ही रहा।

उपर्युक्त वृतांत मैंने इसलिए बता दिया है कि जो मुझे कहना है, उसका संदर्भ आ जाए।

तो मुझे आचार्य महाप्रज्ञ के अपने चातुर्मास (सन् 1997) के दौरान रोज दर्शन का निर्देश हुआ। मैंने एक माह तक दर्शन की हां भर दी। इसी अवधि में एक रोज रात दस बजे के आस-पास (शायद) मैंने दर्शन किए। आंधी और मेह के कारण मैं रेत और पानी से सना था। सिर के बाल सदा ही बेसंवारे रहते हैं, उस दिन तो कुछ ज्यादा ही बेतरतीब थे। मैंने वंदना की। श्रीमुख से निकला-'इतनी रात में। ये हाल।। क्या बात है?' मैंने उत्तर दिया-'गांवों में घूमता हुआ आ रहा हूं। मेह-आंधी ने यह दशा कर दी, पर दर्शन करने तो जरूरी थे। एक माह तक रोज दर्शन का वचन है।' आचार्य महाप्रज्ञ मुझे देख रहे थे और इसी मुद्रा में बोल फूटे-'तो ऐसा क्या है? कल दर्शन कर लेते।'

मैं समझ सकता हूं और यह लिखते हुए आज भी उनकी यह करुणामयी छवि चित्रलिखित सी हो रही है। मेरा प्रत्युत्तर था-'यह नस (गर्दन) सुरक्षित हाथों में सौंपी है। मुझे चिंता कुछ नहीं। आप चाहें, जिस तरह इस्तेमाल करें। गुरुदेव ने तो नहीं बांधा था। आपने बांध लिया। स्नेह और करुणा से भरे स्वर फूटे-'अच्छा अब जाओ। अपना 'हुलिया' ठीक करो।'

अपने अनुयायियों के प्रति ऐसे थे-आचार्य महाप्रज्ञ।

प्रसंगवश पहला किस्सा भी बयान किए देता हूं। बात 'गर्दन' की जो है।

घटना फरवरी, 1981 की है। भीनासर के ही श्री (अब स्वर्गीय) गुलाबचंदजी बैद की बेटी दीक्षार्थिनी कुमारी शारदा के अभिनन्दन, विदाई का आयोजन था। बैदजी, जो मेरे अभिभावक ही नहीं, वह सब थे, जो एक पिता को होना चाहिए-मेरे पास आए और दीक्षा पूर्व शारदा (अब साध्वी शारदाश्रीजी) के विदाई समारोह के आयोजन का

प्रसंग चलाया। मुझे कहा गया कि मुझे ही पूरे आयोजन की बुनावट, संचालन करना है। मैंने कहा–आयोजन की बुनावट तो कर दूंगा, पर संचालन कैसे करूंगा? मैं तो 'महाराज' के जाता नहीं। आप तो जाते हैं। गुलाबचंदजी मेरे 'स्व-निर्वासन' के पूरे घटनाक्रम के साक्षी रहे हैं। वे तो नहीं हैं, पर मुनिश्री राकेशकुमारजी को अवश्य याद है कि किस तरह गुरुदेव के दर्शनों के लिए मुझे अभिप्रेरित करने गुलाबचंदजी को लेकर घर पधारे थे और लंबे समय तक समझाइश की थी। 'स्व-निर्वासन' फिर भी मैंने नहीं तोड़ा था।

फिर मूल बात पर आता हूं। गुलाबचंदजी बैद मेरा कोई तर्क सुनने को तैयार न थे। मैं संचालन के लिए तैयार न था। आखिरशः उन्होंने अपना अमोघ अस्त्र चलाया–'.... मुझे तेरी नस चाहिए।' अब मैं क्या बोलता? जो दुलार अपनी तरुणाई से मैंने उनसे पाया, कहने को कुछ न था–'सिवाय यह कि–यह नस आपके हवाले।' बस। बैदजी चले गए और 23 फरवरी 1981 को कार्यक्रम का पूरा संचालन मैंने किया, मुनिश्री ताराचंदजी की उपस्थिति में। डॉ. छगन मोहता और हरीश भादानी भी उस कार्यक्रम में उपस्थित थे।

जो आचार्य तुलसी मुझे नहीं बांध सके और कहा कि '.... इसे बांधने की जरूरत नहीं, यह अपना ही (उनका) काम कर रहा है। ' इस शुभू पटवा को आचार्य महाप्रज्ञ ने बांध लिया। सन् 1999 से तो पूरी तरह बंध गया। जैन भारती के संपादन का दायित्व इस तरह मुझे सम्भलाया कि मैं कुछ न कर सका। तब से बंधा हूं। पर यह 'बंधन' क्या मेरी 'मुक्ति' में सहायक नहीं? क्या बंधन भी मुक्ति का वाहक बनता है?

अपने किशोरपन से मैंने उनको पढ़ना-समझना (भी) शुरू कर दिया था। मुझे जो आनंद और रस इसमें मिलता है–क्या मैं उसे वाणी दे सकता हूं? नहीं। मेरे लिए यह 'गूंगे का गुड़' है। बस।

उनका स्नेह, उनकी तरलता, उनकी करुणा और उनका वात्सल्य मेरे लिए अपरिमित था। मैं तो यह दावा करता ही हूं, पर न जाने ऐसा आह्लाद भरा दावा कितने करते होंगे। सच मुझे उनसे 'इश्क' है, पर क्यों? मैं तो हूं उन जैसा।

मेरे इस कथन की पुष्टि में एक घटना का जिक्र मैं किए देता हूं। हां। इतनी घटनाएं हैं कि सबका जिक्र मुनासिब नहीं। आखिर संपादक की भी कुछ सीमाएं तो हैं ही। खैर, तो केवल एक घटना।

घटना यह कि आचार्य महाप्रज्ञ विहार करते हुए संभवतः नाल गांव पधारे। वहां एक-दो दिन का प्रवास था। मैं रात्रिकाल में (शायद 8 बजे या आस-पास) पहुंचा। उनकी सेवार्थ जो साधुजन (तरुण साधु) थे, वे बाहर मिले और कहा–'आचार्यश्री का आज का दिन काफी परिश्रम का निकला है। 'पौढ़ा गए हैं।' मेरा प्रश्न था–'क्या आंख लग गई?' उत्तर था–'नहीं। आप जा सकते हैं।' मैंने कहा–तब तो मैं ठीक आ गया। थके हैं, तो थकान उतार दूंगा। किशोर साधुओं में से किसी ने कहा–आप क्या करेंगे? मेरा उत्तर था–महाराज! आप तो गुरुदेव के पास रहेंगे, देख लेना। मैंने उस कक्ष में प्रवेश किया, जहां आचार्यप्रवर पोढ़ाए थे। दर्शन किए।

सवाल था–'तू अभी...हां!'

मैं आ गया हूं।

वंदना करने की ही मुद्रा में मैं बोला–आज काफी परिश्रम हो गया, संत बता रहे हैं। गुरुदेव ने कहा–हां। कुछ हो गया है और हम बातचीत करने लगे। वे किशोर साधु (शायद पांच-सात) वहीं खड़े रहे। पूरी बात का ब्यौरा तो क्या दूं पर मैंने खासी विनोद भरी बातें आचार्यप्रवर से की। वे भी प्रत्युत्तर में उसी तेवर पर उतर आए। एक ऐसे मनीषी, दुर्द्धर्ष योगी, अविराम साधक और गहरे विचारक-दार्शनिक से मैं जिस तरह बातें करता रहा–शायद मेरे जीवन की विरल घटना है। लगभग पैंतीस-चालीस मिनट हम लोग वार्तालाप में संलग्न रहे। वे किशोर संत निर्निमेष इस घटना के साक्षी रहे। आखिर मैंने वंदना करते हुए कहा–मेरा काम हो गया, अब मैं चलूं। गुरुदेव का प्रश्न था–तुम्हारा क्या काम था। मेरा प्रत्युत्तर था–आपकी थकान उतारना। मैंने थकान उतार दी, अब चलता हूं। श्रद्धेय का सवाल था–अच्छा। तो तुम इसलिए ऐसी बातें कर रहे थे? और एक मुस्कान चारों ओर फैल गयी। मुनिश्री जयकुमारजी जो वहां थे वे आज भी यह घटना दोहराते हैं।

सचमुच, आज मैं सोचता हूं, इसमें मेरा क्या है। सब उन्हीं का दिया था। उनसे बात करना और वह भी विनोद में, क्या संभव है? पर जिन पर उनका आशीर्वाद रहा है, सिर पर जब उनका हाथ है, उसके लिए तो सब संभव ही है। बात चल ही निकली है, तो इसकी पुष्टि में प्रो. दयाकृष्ण (जाने-माने दर्शन शास्त्री, जो राजस्थान विश्वविद्यालय के कुलपति भी रहे) के एक पत्र का जिक्र करता हूं। जैन भारती के प्रसंग में एक पत्र उन्होंने मुझे लिखा। पत्र की अन्य बातें छोड़ देता हूं और एक यह बता देता हूं। उन्होंने लिखा–...तुम पर तो आचार्यश्री महाप्रज्ञ की कृपा है, तुम यह काम करते रहोगे, निभा लोगे। बीदासर प्रवास के दौरान श्री दयाकृष्ण के इस पत्र का जिक्र करते हुए मैंने कहा–हम तो श्रद्धा और भक्तिवश कह देते हैं कि सब आप करा देते हैं, पर 'प्रो.दयाकृष्ण' भी

यही लिख रहे हैं। क्या उनकी भक्ति भी ऐसी ही है? आचार्य महाप्रज्ञ की पलकें जैसे ध्यानस्थ थीं, उन्होंने सुना, पर उत्तर कुछ न दिया।

मुझे समझ आया कि ऐसे बनता है कोई दिव्य पुरुष। ज्ञान और विवेक, विचार और साधना, शक्ति और सेवा तथा पर-दुख-कातरता एक ही व्यक्ति में एक साथ कोई देखना चाहे तो वह आचार्य महाप्रज्ञ में देख सकता है।

ये पंक्तियां मैं आज लिख रहा हूं। आज यानी 28 अप्रैल 2011, वैशाख कृष्णा एकादशी। वर्ष भर पूर्व की वैशाख की इसी एकादशी को एक सूरज कहीं 'ओट' में आ गया था। एक साल बीत गया, उनको देहातीत हुए। फिर भी मैं 'है' पद में बात कर रहा हूं। 'था', 'थे' या 'थी' पद मुझसे नहीं लग रहा। क्यों? क्या मैं भूल कर रहा हूं? जी नहीं। मेरे लिए वे सदा 'हैं' पद में ही हैं। वे 'थे' मेरे लिए कभी न होंगे। आज भी प्रातःकाल आंख उनकी छवि के आगे ही खुलती है। किसी ने दी थी यह 'छवि' मुझे, और घर में ऐसी जगह रखी है यह छवि, कि खुलते ही आंख वहीं जा टिकती है। नहीं हैं, न वे मेरे लिए 'थे'। जी। आपके लिए भी वे 'थे' नहीं, 'हैं' ही हैं।

हम सबके लिए 'हैं' है। सदा उपस्थित। बस...

28.04.2011

समणी सत्यप्रज्ञाजी।

वंदामि नमंसामि। आपके आदेश की पालना में मैंने विलंब कर ही दिया। अचाहा। जो हुआ, हुआ। पर आज पूज्यवर की पुण्य तिथि है। आज मैं इसे लिख चुका हूं। आपका मई अंक अब तक तैयार हो चुका है, ऐसा मैं मानता हूं। जाहिर है कि जून अंक में ही यह आलेख लगेगा। यदि ऐसा हो जाए तो कितना अनायास संयोग हो जाएगा कि जो महाप्रयाण के रोज लिखा, वह पावन जन्मोत्सव पर छपा।

यह कि वे 'थे' कब रहे, सदा 'हैं' ही हैं। यह पुष्ट हो गया।

आप देखें। कुछ भी करने के लिए आप स्वतंत्र हैं। यह 'पीस' अब आपके अधिकार में। जो चाहें, जैसा चाहें-करें। बस..

वंदामि

विनम्र

शुभू पटवा

करुणा के सागर-आचार्य महाप्रज्ञ

''गुरु की करुणा से मिलता संयम सुखमय,
गुरु के चरणों में रहता साधक निर्भय।''

सचमुच में ये पंक्तियां मेरे जीवन के लिए वरदान स्वरूप बनी। गुरु की करुणामय दृष्टि मेरे ऊपर पड़ी तो मुझे नया जीवनदान मिल गया। मैं अपने आपको सौभाग्यशाली मानती हूं। मुझे करुणा के सागर आचार्य महाप्रज्ञजी जैसे गुरु मिले। गुरुदेव ने साध्वीश्री संगीतश्रीजी का शहादरा चातुर्मास फरमाया। अचानक कैंसर जैसी असाध्य बीमारी का पता चला। वह दिन मुझे याद है 28 फरवरी, सोचा क्या करें? औरंगाबाद सभा के अध्यक्ष मदनलालजी आच्छा व डॉ. कांतिलालजी चण्डालिया ने साध्वीश्री से निवेदन किया-ऑपरेशन तत्काल हो जाए तो अच्छा है, सीने में गांठ है। साध्वीश्रीजी ने फरमाया-गुरुदेव को निवेदन करवा दें। जैसा गुरुदेव फरमायेंगे। अपने तो गुरु की दृष्टि-सुख की सृष्टि है। श्रीचरणों में स्थिति का निवेदन करवाया व शल्य चिकित्सा के लिए कहा। गुरुदेव ने मेरे पर इतनी कृपा दृष्टि बरसाई और कहा-शल्य चिकित्सा के साथ-साथ इस मंत्र-''सव्व साहूणं'' का प्रयोग भी करना है। गुरु के वचन मेरे लिए वरदान सिद्ध हुए। मैं प्रतिदिन इस मंत्र का जप करती रही जिससे मेरा आत्मबल, मनोबल बढ़ता रहा। आज मैं पूर्ण रूप से स्वस्थता की अनुभूति करती हूं और मुझे लगता है, मैं इस असाध्य बीमारी से मुक्त हो गई। मैं केवल स्वस्थ ही नहीं, पूर्णरूप से समाधिस्थ हूं।

समय-समय पर मुझे गुरुदेव के संदेश मिलते रहे। मेरा आत्मबल बढ़ता रहा। मैं अपने आपको सौभाग्यशाली मानती हूं। संघ की छोटी सी कली पर जो कृपा बरसाई, मैं जन्म-जन्मान्तर तक नहीं भूल सकती।

- साध्वी मुदिताश्री

अपने घर में आ गयी

ध्यान स्वयं को स्वयं के निकट ले जाने वाला साधन है। ध्यान बाह्य प्रवृत्तियों से निवृत्त होने की प्रक्रिया है। स्वयं को निर्भर बनाने की पद्धति का नाम ध्यान है। जब मैंने ध्यान के कुछ प्रयोगों का नियमित अभ्यास किया तो स्वयं में एक परिवर्तन को महसूस किया। आग्रहयुक्त व्यवहार का अनाग्रही व्यवहार में परिणमन स्पष्ट रूप से सामने आया। भीतर के भावों को नजदीक से एवं निष्पक्षता के साथ पढ़ने का अवसर मिला। मुझे लगता है मैं अपने वास्तविक घर में आ गयी।

- समणी पूर्णप्रज्ञा

दुर्लभ है ध्यान

मनुष्य का जीवन ऊर्जा का महासागर है। उसके भीतर अनगिनत, अन्तहीन ऊर्जा की तरंगे तरंगित होती रहती है। अनुभवियों का कहना है कि तरंग की स्वाभाविक आकांक्षा सागर बनने की होती है। तरंग जब तक महासागर की व्यापाक में फैले नहीं तब तक उसे तृप्ति नहीं मिल सकती। ठीक वैसे ही मनुष्य के भीतर भी परम तत्व से साक्षात्कार करने की उत्कंठा रहती है। यह जीवन की सफलता है, तृप्ति है। इस सफलता के लिए प्रेक्षाध्यान का प्रयोग एक माध्यम है।

आचार्यश्री तुलसी के शब्दों में–'आत्म–साक्षात्कार प्रेक्षाध्यान के द्वारा'। ध्यान एक ऐसी शक्तिशाली प्रक्रिया है जिसका आलम्बन लेकर व्यक्ति अपनी मंजिल तक पहुंचने में सफल हो जाता है। कोई शूरमां और पराक्रमी व्यक्ति ही ध्यान कर सकता है। चित्त शुद्धि के लिए प्रेक्षाध्यान जरूरी है। इससे क्रोध शान्त होता है। प्रेक्षाध्यान के नियमित प्रयोग से वासनाएं दूर होती है, स्मरण शक्ति तेज होती है। ढ़ाई अक्षर का यह शब्द लिखने, पढ़ने और बोलने में सरल प्रतीत होता है किन्तु ध्यान वास्तव में करना दुर्लभ है, ऐसा मेरा मानना है। दुर्लभता के उस क्रम में मैं अपने को सदा नियोजित करती रहूं–यही अभीप्सा है।

-मुमुक्षु नम्रता

उत्तम दर्द निवारक : प्रेक्षाध्यान

प्रेक्षाध्यान आचार्य महाप्रज्ञ का बहुत बड़ा अवदान है। प्रेक्षाध्यान का अर्थ है कि अपने द्वारा अपनी आत्मा को देखना। ध्यान से मन तथा दिमाग दोनों शांत रहते हैं। अगर मन शांत रहेगा तो शरीर भी स्वस्थ रहेगा। प्रेक्षाध्यान के प्रयोग यदि ध्यान से किए जायें तो इससे काफी शक्ति और शांति मिलती है। मेरी कमर में काफी सालों से दर्द रहता है उसके लिए मैंने काफी उपचार करवाये तथा कमर का ऑपरेशन भी करवाया लेकिन कोई निष्कर्ष नहीं निकला। इस बार मुझे समणी कुशल प्रज्ञाजी के दर्शन करने का सौभाग्य मिला, उन्होंने मेरे को 'ज्योति केन्द्र' पर नीले रंग का ध्यान करने के लिये कहा तथा साथ–साथ यह सुझाव देने को कहा कि, 'मेरी कमर का दर्द ठीक हो रहा है।' मैं एक महीने से यह प्रयोग कर रही हूं। जिससे मुझे धीरे–धीरे लाभ हो रहा है। अब मुझे यह विश्वास हो रहा है कि इस प्रयोग को अगर मैं नियमित करूंगी तो अवश्य लाभ होगा। वास्तव में 'प्रेक्षाध्यान' बहुत ही चमत्कारिक चीज है।

- वीणा बांठिया, कोलकाता

प्रेक्षाध्यान से स्मृति विकास

मैंने शादी के तेइस साल बाद प्रेक्षाध्यान जीवन विज्ञान की पढ़ाई शुरू की। शुरू तो कर दी पर मुझे याद बिल्कुल नहीं होता। मैंने एक बार समणीजी को अपनी बात कही कि मुझे याद नहीं होता इसलिए मैं पढ़ाई छोडूंगी। तब उन्होंने मुझे समझाया व कुछ प्रायोगिक प्रयोग भी सिखाए। उन्होंने स्मृति विकास के लिए महाप्राण ध्वनि व 'ॐ नमो श्रुति स्मृति मति बुद्धि अवधारणी स्वाहाः' मंत्र का प्रतिदिन पढ़ने से पहले पांच बार प्रयोग आस्था के साथ करने की सलाह दी। मैंने वैसा किया, और उसका परिणाम है कि आज मैंने प्रेक्षाध्यान व जीवन विज्ञान में एम.ए. कर लिया है। अब भी मैं ध्यान के प्रयोग करती हूं जिससे मेरे जीवन में काफी बदलाव आया है।

- सरोज बोथरा, कोलकाता

ध्यान से साक्षात्कार

ध्यान के प्रयोग का क्रम प्रारंभ होते ही धीरे–धीरे काया की चंचलता पर अंकुश लग गया। मन की एकाग्रता भी बढ़ने लगी। ध्यान के महत्त्व व उपयोगिता से, अनुभव के द्वारा मेरा परिचय होने लगा। मैंने महसूस किया कि भीड़ में भी सहज ही मेरी आंख बंद हो जाती हैं और मैं अकेली हो जाती हूं। एक–दो मिनट के लिए, दिन में तीन–चार बार श्वास प्रेक्षा में लीन हो अपने मानसिक संतुलन को बनाए रखने में सफल हो रही हूं। विपरीत परिस्थिति, आवेश या आवेग जब भी मुझ पर हावी होते हैं मैं स्वमेव ही दीर्घ श्वास प्रेक्षा करने लगती हूं। सहज ही विचार सकारात्मक हो जाते हैं और कठिन परिस्थिति भी आसान

शेषांश पृष्ठ 45 पर

संस्कार निर्माण शिविर में प्रेक्षाध्यान की भूमिका

कोयम्बटूर। आचार्यश्री महाश्रमणजी की शिष्याएं समणी निर्देशिका ज्योतिप्रज्ञाजी, समणी मानसप्रज्ञाजी, समणी समीक्षाप्रज्ञाजी व समणी वर्धमानप्रज्ञाजी के सान्निध्य में 'एक दिवसीय कन्या किशोर वर्कशॉप' का आयोजन किया गया जिसमें लगभग 51 किशोर-किशोरियों ने भाग लिया। समणी वर्धमानप्रज्ञाजी ने जप व ध्यान के प्रयोग करवाए। अध्यक्ष श्रीमान रामलालजी बुच्चा ने शिविर में समागत बच्चों का स्वागत किया।

शिविर में महेन्द्र बैंगानी ने संस्कार निर्माण के बारे में, श्रीमती मधु बांठिया ने योगासन व कायोत्सर्ग के तथा राकेश लूणियां ने जीवन व्यवहार को ऊंचा बनाने हेतु प्रशिक्षण दिया। शिविर के दौरान बच्चों की टीम बनाकर प्रश्नों के माध्यम से ज्ञानवर्धक व रोचक कार्यक्रम प्रस्तुत किया गया।

समणी निर्देशिका ज्योतिप्रज्ञाजी ने स्मृति विकास विषय पर प्रोजेक्टर के माध्यम से बुद्धि विकास के सूत्र बताए जिसमें प्रेक्षाध्यान, मुद्रा, ध्वनि, योगासन आदि के प्रयोग भी बताए। कार्यक्रम के अंत में खुला प्रश्नमंच रखा गया जिसमें बच्चों ने अपनी जिज्ञासाएं प्रस्तुत की तथा समणीजी ने मनोवैज्ञानिक ढंग से हर समस्या का समाधान दिया। कार्यक्रम की व्यवस्थाओं में निर्मल बेगवानी, श्रीमती विजया गेलड़ा, रूपकला भंडारी, प्रतिमा बेगवानी, बबिता गुनेचा आदि का योगदान रहा।

प्रेक्षाध्यान प्रशिक्षण कार्यशाला

राजसमंद। मुनि जयंत कुमार ने प्रेक्षाध्यान की महत्ता बताते हुए कहा कि यह एक रूपांतरण की प्रक्रिया है। इसके विभिन्न प्रयोगों के अभ्यास से व्यक्ति अपनी वृत्तियों का परिष्कार कर भावों पर नियंत्रण रख सकता है। तेरापंथ महिला मण्डल द्वारा मुनि सुमेरमल 'सुदर्शन' के सान्निध्य में आयोजित प्रेक्षाध्यान प्रशिक्षण कार्यशाला में मुनि जयंतकुमार ने समवृत्ति श्वास प्रेक्षा का प्रायोगिक प्रशिक्षण देते हुए कहा कि समवृत्ति श्वास प्रेक्षा से प्राण ऊर्जा का संतुलन स्थापित होता है और अनुकूल-प्रतिकूल माहौल में सम रहने की शक्ति मिलती है। मुनि तन्मय कुमार द्वारा प्रेक्षा गीत के संगान के साथ शुरू हुई कार्यशाला में मुनि मेरु कुमार ने 'हूं' बीज मंत्र का जप करवाया। महिला मण्डल की बहिनों ने प्रेक्षा प्रणेता आचार्य महाप्रज्ञ की पुस्तक 'प्रेक्षाध्यान प्रयोग पद्धति' के आधार पर प्रशिक्षण प्राप्त किया। मण्डल की अध्यक्षता मंजू बड़ोला एवं मंत्री मंजू दक ने कार्यशाला के संदर्भ में जानकारी प्रस्तुत की।

प्रेक्षाध्यान एक रोग निवारक औषधि

कोलकाता। साध्वीश्री कनकश्री के सान्निध्य में तेरापंथ महिला मंडल, कोलकाता द्वारा एक दिवसीय प्रेक्षाध्यान शिविर महासभा भवन में आयोजित किया गया जिसमें सौ से अधिक भाई-बहिनों ने भाग लिया। शिविर का शुभारंभ महिला मंडल के द्वारा प्रस्तुत प्रेक्षा-गीत से हुआ। कोलकाता महिला-मंडल की अध्यक्षा श्रीमती जतन बैंगानी ने सभी शिविरार्थियों का स्वागत किया।

जयपुर से समागत श्रीमती शिवानी बोथरा ने 'स्वस्थ रहने के लिए आसन जरूरी है' विषय पर अपने महत्त्वपूर्ण विचार रखते हुए आसनों का अभ्यास भी करवाया। उन्होंने कहा-आसन करने के चार लाभ हैं—रोग प्रतिरोधात्मक शक्ति बढ़ती है, रचनात्मकता और निर्णायक क्षमता का विकास होता है, नकारात्मक भाव दूर होते हैं तथा आध्यात्मिक रुचि का जागरण होता है।

शिविर के दूसरे सत्र में मधुमेह रोग विशेषज्ञ डॉ. एम.बी. गुप्ता ने 'स्लाइड शो' के माध्यम से डायबिटीज के लक्षण, कारण और उसके निवारण के उपाय भी बताए। अंतिम सत्र में साध्वी मधुलताजी ने मधुमेह के निवारण के लिए मंत्र, जप, मुद्रा एवं प्राणायाम आदि का प्रायोगिक प्रशिक्षण दिया। अखिल भारतीय महिला मंडल की उपाध्यक्ष श्रीमती सूरज बरड़िया ने 'डायबिटीज और मनोविज्ञान' विषय पर उपयोगी टिप्स बताए। सभी प्रशिक्षकों का महिला मंडल की ओर से साहित्य सम्मान किया गया। कार्यक्रम की प्रायोजक श्रीमती विमला कोठारी को अध्यक्ष जतन बैंगानी ने सम्मानित किया। शिविर के सभी सत्रों का कुशल संचालन श्रीमती मंजु सुराणा ने किया।

विद्यालय में प्रेक्षाध्यान

पटियाला। डॉ. साध्वी लावण्ययशाजी ने विद्यालय के छात्र-छात्राओं एवं अध्यापकगण को संबोधित करते हुये कहा कि अच्छा इंसान बनाना सबसे कठिन है। इसके लिए बचपन से ही अच्छे संस्कारों को जगाना जरूरी है। जीवन विज्ञान व प्रेक्षाध्यान के द्वारा शारीरिक, मानसिक व भावनात्मक विकास होता है तथा प्रेम, मैत्री, करुणा, विनम्रता व सहनशीलता के संस्कार उदित होते हैं। साध्वीश्री ने कहा कि जीवन प्रगति के लिए नशा सबसे बड़ा बाधक तत्व है। इस अवसर पर मादक व नशीले पदार्थों से दूर रहने के लिए पंचसूत्रीय अणुव्रत संकल्प पत्र भरवाकर आत्मसाक्षी से संकल्प करवाये गए और प्रेक्षाध्यान, आसन, प्राणायाम, स्मरणशक्ति के प्रयोग करवाकर बच्चों को लाभान्वित किया।

साध्वी सूरजप्रभाजी ने बताया कि नियमित प्रयोगों के द्वारा व्यक्ति अपने व्यक्तित्व में परिवर्तन, कार्यक्षमताओं में अभिवृद्धि को स्पष्ट रूप से महसूस कर सकता है। स्कूल के प्राध्यापक ने साध्वी द्वय का स्वागत करते हुये कहा—ऐसे प्रयोगों की हमारे जीवन में नितांत आवश्यकता है।

रतनलालजी दफ्तरी व लीला देवी दफ्तरी ने बच्चों को पुरस्कार देकर उनका उत्साह वर्धन किया।

महावीर जयन्ती पर प्रेक्षाध्यान

आसीन्द। आचार्यश्री महाश्रमणजी के शिष्य समण सिद्धप्रज्ञ ने महावीर जयन्ती पर जनसभा को संबोधित करते हुए कहा कि—भगवान महावीर ध्यान के परम उपासक थे उन्होंने परम ज्ञान को पाने के लिये ध्यान की सर्वोच्च साधना की। उन्हें ध्यान की परम गहराई में अतीन्द्रिय ज्ञान की प्राप्ति हुई थी।

ध्यान के द्वारा जहां एक ओर मानसिक एवं भावनात्मक संतुलन सधता है वहीं दूसरी ओर व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास भी होता है। प्रेक्षाध्यान के प्रयोगों से प्रसन्नता, आनन्द, समता, स्वास्थ्य आदि की प्राप्ति होती है।

करीब दो हजार से भी अधिक संख्या में अनेक क्षेत्रों से समाहित जनमेदनी के इस कार्यक्रम में समणजी ने प्रेक्षाध्यान की वैज्ञानिक एवं व्यावहारिक जानकारी देते हुए उसके अनेक प्रयोग कराए जिसमें श्वास प्रेक्षा, कायोत्सर्ग, प्राणायाम विशेष उल्लेखनीय एवं लाभदायी रहे।

प्रेषक - सुरेश रांका

महावीर जयन्ती पर प्रेक्षाध्यान

आचार्य महाश्रमणजी के विद्वान शिष्य मुनिश्री जिनेशकुमार की प्रेरणा से अणुव्रत महासमिति की विशिष्ट कार्यकारिणी सदस्या, अणुव्रत समिति आ.प्र. की उपाध्यक्षा, निर्मला बैद ने महावीर विकलांग केन्द्र व चैरपल्ली जेल में महावीर जयन्ती के उपलक्ष में अणुव्रत-प्रेक्षाध्यान के विविध प्रयोग—दीर्घश्वास प्रेक्षा, महाप्राण ध्वनि, ज्योति केन्द्र प्रेक्षा आदि करवाये।

जेल के सुपरिंटेन्ट श्री निवास व जेलर रामचन्द्रजी का कार्यक्रम में पूर्ण सहयोग रहा। कार्यक्रम में जैन रत्न सुरेन्द्रजी लूणिया, प्रसन्नजी भण्डारी, हनुमान बैद, हर्षवर्धन सेठिया, रिद्धिश्व जागीरदार, भगवती निर्मला बैद (कार्यक्रम संयोजक) महिला मण्डल की अध्यक्ष सरोज भण्डारी व अन्य महिलाएं उपस्थित थे।

प्रेषक - निर्मला बैद

प्रेक्षाध्यान से सकारात्मक सोच का विकास

हांसी। अहिंसा प्रशिक्षण केन्द्र हांसी के तत्त्वावधान में आयोजित कार्यक्रम में आचार्य महाश्रमण के शिष्य मुनिश्री विजयराज ने संभागियों को संबोधित करते हुए कहा कि सकारात्मक सोच जीवन का आधार है। इसी से व्यक्ति का पारिवारिक व सामाजिक जीवन उन्नत होता है। सकारात्मक सोच प्रगति का मार्ग प्रशस्त करता है जबकि नकारात्मक सोच जीवन में दुर्गति लाता है। इसलिए व्यक्ति को सकारात्मक सोच बनाने के उपाय करना चाहिए।

मुनिश्री ने नमस्कार मुद्रा का प्रयोग मंत्र के साथ कराया व इसके लाभों से अवगत कराया। आचार्यश्री महाप्रज्ञ के अभिनव अभियान जीवन विज्ञान, प्रेक्षाध्यान, अणुव्रत व अहिंसा प्रशिक्षण को जीवन में अपनाने की सलाह दी। संभागियों को शिक्षा में क्रांतिकारी परिवर्तन लाने के लिए अणुव्रत, जीवन विज्ञान एवं प्रेक्षाध्यान की पुस्तकें भेंट की गयी। । अहिंसा प्रशिक्षक अवधेश कुमार ने अहिंसा प्रशिक्षण की गतिविधियां प्रस्तुत की। अहिंसा प्रशिक्षण केन्द्र के सिलाई संभाग की बहिनों ने आभार व्यक्त किया।

प्रेषक - अवधेश कुमार

जीवन विज्ञान संस्कार निर्माण प्रतियोगिता-2011 का शुभारम्भ

राजसमन्द, 13 मई। आचार्यश्री महाश्रमणजी के 50वें जन्म दिवस के उपलक्ष में वर्ष भर आयोजित होने वाले 'आचार्य महाश्रमण अमृत महोत्सव के उपलक्ष' में जीवन विज्ञान अकादमी, जैन विश्व भारती, लाडनूं द्वारा ''जीवन विज्ञान संस्कार निर्माण प्रतियोगिता-2011'' का शुभारम्भ किया गया। आचार्यश्री महाश्रमणजी के प्रथम पट्टोत्सव के अवसर पर प्रतियोगिता का शुभारम्भ करते हुए जैन विश्व भारती के संयुक्त मंत्री श्री विजयसिंह चोरड़िया एवं जीवन विज्ञान अकादमी के संयोजक डॉ. सूरजमल सुराणा ने पूज्यप्रवर को प्रतियोगिता प्रश्नोत्तरी एवं आधार पुस्तकों का सेट उपहृत किया। इस प्रतियोगिता के अन्तर्गत आचार्यश्री महाश्रमणजी द्वारा रचित ''आओ हम जीना सीखें'', साध्वी सुमतिप्रभाजी की पुस्तक 'आचार्य महाश्रमण : जीवन परिचय' एवं मुनि किशनलालजी की पुस्तक ''जीवन विज्ञान एक परिचय'' के आधार पर तैयार की गई प्रश्नोत्तरी को प्रतिभागी अपने घर बैठे हल करके जीवन विज्ञान अकादमी को प्रेषित कर सकेंगे। प्रश्नोत्तरी में दस प्रकार के कुल 125 प्रश्न हैं। प्रश्नोत्तरी हल करके भेजने की अंतिम तिथि 30 सितम्बर, 2011 तथा प्रतियोगिता का प्रवेश शुल्क रुपये 100 रखा गया है। यह प्रतियोगिता श्रद्धा की प्रतिमूर्ति प्रेक्षा प्रशिक्षिका स्व. शान्ताबाई सिंघवी की पुण्य स्मृति में 'शान्ताबाई माणकराज सिंघवी चेरीटेबल ट्रस्ट, वंदवासी, चैन्नई' द्वारा प्रायोजित है। अखिल भारतीय तेरापंथ युवक परिषद ने भी इस प्रतियोगिता के व्यापक प्रचार-प्रसार का दायित्व ग्रहण किया है।

- हनुमानमल शर्मा

पृष्ठ 42 का शेषांश

प्रतीत होती है। मेरे इस परिवर्तन को स्वयं समणीजी ने एवं मेरे निकट रहने वाले व्यक्तियों ने भी महसूस किया। ध्यान शब्द एक है पर लाभ अनेक हैं। मुझे ध्यान से शारीरिक और मानसिक रूप से बहुत फायदा हुआ। मैंने मन ही मन संकल्प किया कि मैं ध्यान का निरंतर प्रयोग करूंगी और अपने आस-पास वालों को भी प्रेरित करूंगी।

- कल्पना बैद, कोलकाता

जीवन विज्ञान संस्कार निर्माण प्रतियोगिता - 2010 का परिणाम घोषित

लाडनूं। जीवन विज्ञान प्रणेता युगप्रधान आचार्यश्री महाप्रज्ञ को 'महाप्रज्ञ' अलंकरण के उपलक्ष में जीवन विज्ञान अकादमी, जैन विश्व भारती लाडनूं द्वारा आयोजित 'जीवन विज्ञान संस्कार निर्माण प्रतियोगिता-2010' का परिणाम घोषित किया गया। इसमें प्रथम पुरस्कार-अंकुर बरड़िया पुत्र ओमप्रकाश बरड़िया, सरदारशहर, द्वितीय पुरस्कार सुश्री आयुषी जैन पुत्री रविन्द्र जैन, बालोतरा, तृतीय पुरस्कार सुश्री गुणवती मालू पुत्री नोरतन मालू, सुजानगढ़ को तथा सात सांत्वना पुरस्कार क्रमशः मुमुक्षु सुनिता चिण्डालिया पुत्री मोहनलाल चिण्डालिया, लाडनूं, ऋषभ कुमार संचेती पुत्र कनकमल संचेती सरदारशहर, श्रीमती सुमन कोठारी पत्नी संजीव कोठारी, मुम्बई, श्रीमती राजू देवी छाजेड़ पत्नी छोटूलाल छाजेड़, सरदारशहर, गौतम शर्मा पुत्र दिनेश कुमार शर्मा, लाडनूं, सुश्री ज्योति राठौड़ पुत्री विमल कुमार राठौड़ बीदासर एवं सुश्री खुशबू गिड़िया पुत्री विकास कुमार गिड़िया, बीदासर को प्राप्त हुए।

ज्ञातव्य है कि यह प्रतियोगिता प्रतिवर्ष श्रद्धा की प्रतिमूर्ति प्रेक्षा प्रशिक्षिका स्व. शान्ताबाई सिंघवी की पुण्य स्मृति में 'शान्ताबाई माणकराज सिंघवी चेरीटेबल ट्रस्ट, वंदवासी, चैन्नई' के आर्थिक सहयोग से आयोजित की जाती है।

प्रेषक - हनुमानमल शर्मा

संस्था प्रधानों की संगोष्ठी में जीवन विज्ञान जागृति का शंखनाद

आमेट। नगर एवं ब्लॉक के लगभग 87 सरकारी एवं निजी विद्यालयों के प्रधानाध्यापकों की दो दिवसीय सत्रान्त बाकपीठ संगोष्ठी का आयोजन निकटवर्ती भोलीखेड़ा ग्राम में हुआ। इस संगोष्ठी में आमेट अणुव्रत समिति के मंत्री चांदमल छाजेड़ ने अणुव्रत की उपयोगिता एवं आचार्यश्री महाश्रमणजी के मेवाड़ प्रवास के कार्यक्रमों, तेरापंथ सभा के सहमंत्री उत्तमचंद बोहरा ने प्रेक्षाध्यान एवं जीवन विज्ञान तथा तेयुप. के ज्ञानशाला प्रभारी मोतीलाल डांगी ने अणुव्रत के उद्देश्य एवं वर्तमान में अणुव्रत की प्रासंगिकता पर अपनी प्रस्तुति दी। संगोष्ठी में उपस्थित बड़ी संख्या में प्रबुद्धजनों एवं शिक्षकों ने इस वार्ता पर हर्ष व्यक्त कर अणुव्रत, जीवन विज्ञान एवं प्रेक्षाध्यान के आयामों को विद्यालयों में साकार करने का संकल्प व्यक्त किया। इस अवसर पर प्रधानाध्यापकों ने अणुव्रती बनने एवं व्यसन मुक्ति के संकल्प-पत्र भर कर प्रदान किए।

अध्यात्म योग का मासिक पत्र
प्रेक्षाध्यान

आज ही सदस्य बनें

सदस्यता शुल्क :	एक वर्ष 250 रु.	तीन वर्ष 750 रु.	दस वर्ष 2500 रु.

- डी.डी./एम.ओ./चेक- 'जैन विश्व भारती' के नाम से लाडनूं में देय हो जिन्हें 'तुलसी अध्यात्म नीडम्, जैन विश्व भारती, लाडनूं-341306 (राजस्थान)' के पते पर भेजा जाना चाहिए।
- चेक द्वारा भुगतान करने पर, लाडनूं से बाहर के चेकों पर कृपया सदस्यता शुल्क में 50 रुपये का निकासी शुल्क जोड़ कर भेजें।
- चेक द्वारा भुगतान की स्थिति में, 4-6 सप्ताह प्रक्रिया में लग सकते हैं।
- कृपया अपना नाम और पता स्पष्ट अक्षरों में पिन-कोड, फोन नं. और ई-मेल आई.डी. के साथ भरें।
- तुलसी अध्यात्म नीडम् किसी भी डाक की विलंब, परिवहनक्षति या सदस्यता फॉर्म की किसी गलती के लिए जिम्मेदार नहीं होगा।
- अधिक जानकारी अथवा सहायता के लिए संपर्क करें : 09928856799

यह फॉर्म भर कर डी.डी. चैक या एम.ओ. के साथ भिजवाएं

हां, मैं चाहता हूं ○ नई सदस्यता ○ नवीनीकरण

○ 1 वर्ष के लिए ○ 3 वर्ष के लिए ○ 10 वर्ष के लिए

.... रुपये के लिए 'जैन विश्व भारती' के नाम से डी.डी./एम.ओ./चैक नंबर -

.... दिनांक .... बैंक .... संलग्न है।

नाम : .... उम्र : .... व्यवसाय : ....

पता : ....

शहर : .... राज्य : .... पिन-कोड : .... देश : ....

ई-मेल : .... टेलीफोन : ....

यदि, नवीनीकरण करवा रहे हैं तो सदस्यता क्रमांक ....

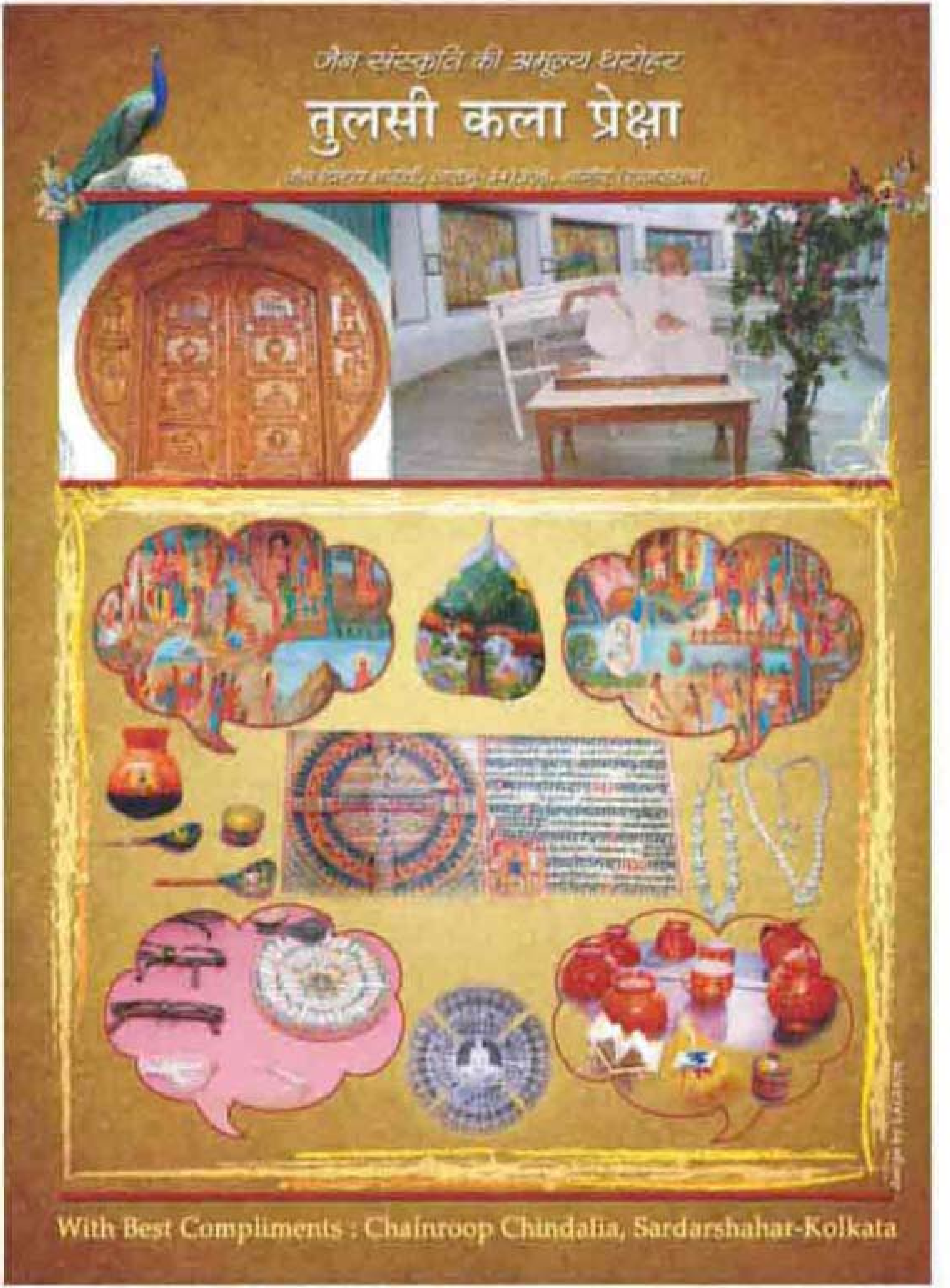
जैन संस्कृति की अमूल्य धरोहर
तुलसी कला प्रेक्षा
With Best Compliments : Chainroop Chindalia, Sardarshahar-Kolkata

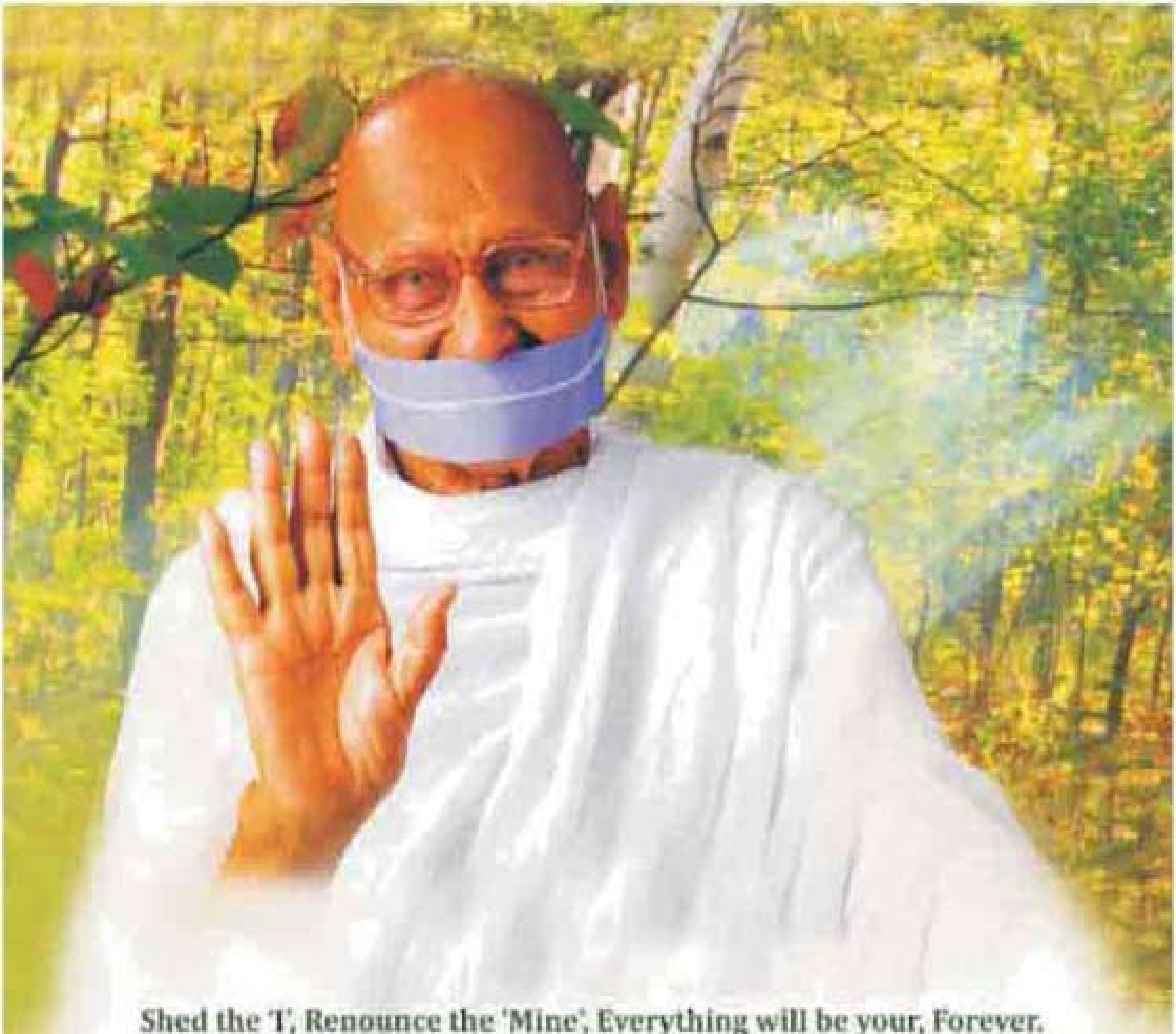

Shed the 'I', Renounce the 'Mine', Everything will be your, Forever.

-Acharya Mahapragya

With best compliments from :

Ratanlal Basant Kumar Parakh (Churu) Kolkata

ORBIT GROUP

The Orbit, 1 Garstin Place, Kolkata-700 001 Ph: 4011 9050 (20 lines)

Fax: 2210 1256 email: info@orbitgroup.net | www.orbitgroup.net

Orbit Residences. The key to high living.